शोध सरोवर पत्रिका

आरती, वषुतक्काटु, तिरुवनंतपुरम-695 014, केरल राज्य।

RNI No. KERHIN/2017/70008 ISSN No.2456-625 X

वर्ष 7 अंक 28 **त्रैमासिक हिन्दी शोध पत्रिका** 10 अक्तूबर, 2023

पीयर रिव्यू समिति :
डॉ.शांति नायर
डॉ.के श्रीलता
डॉ.बी.अशोक

मुख्य संपादक
डॉ.पी.लता

प्रबंध संपादक
डॉ.एस.तंकमणि अम्मा

सह संपादक
प्रो.सती के
डॉ.एस.लीलाकुमारी अम्मा
श्रीमती वनजा पी

संपादक मंडल
डॉ.बिन्दु.सी.आर
डॉ.षीना.यू.एस
डॉ.सुमा.आई
डॉ.एलिसबत जोर्ज
डॉ.लक्ष्मी.एस.एस
डॉ.धन्या.एल
डॉ.कमलानाथ.एन.एम
डॉ.अश्वती.जी.आर

इस अंक में

संपादकीय	:	
महानगरीय जीवन की यथार्थ दास्तानः 'महानगर की मैथिली'	: डॉ.जयश्री ओ	5
श्री विष्णु प्रभाकर के 'सीमा रेखा' एकांकी में चित्रित जनतंत्र	: डॉ.राजू सी.पी	9
समकालीन कविता-पट में पितृसत्तात्मक समाज की स्त्री	: डॉ.सिन्धु एस. एल	12
'एक सत्य हरिश्चंद्र' नाटक में अभिव्यक्त सामाजिक क्रांति	: डॉ. एलिसबत जॉर्ज	16
देव-त्रय की देन	: डॉ.सुमा आई	18
नारी की अस्मिताः समकालीन उपन्यास में	: डॉ सिन्धु जी नायर	21
समकालीन साहित्य-सामाजिक संदर्भ	: डॉ. निधि शर्मा	27
'नाकोहस' उपन्यास में चित्रित मानवीय अभिव्यक्तियों का शासन	: डॉ. संजीव कुमार ए	33
'काला पादरी' उपन्यास का वैशिष्ट्य	: जीत कौर	36
नयी कविता : स्वरूप और दृष्टि	: अमित कुमार	41
'हलफनामे' उपन्यास में अभिव्यक्त किसान संदर्भित समस्याएँ	: धन राज	46

यू जी सी से अनुमोदित पत्रिका

लेखकों से निवेदन

भाषा, साहित्य, समाज एवं संस्कृति पर लिखी गयी स्तरीय मैलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ भेजें। प्राकशनार्थ अनूदित रचनाओं के साथ मूल लेखकों से प्राप्त सहमति पत्र भी भेजें। रचनाएँ हिंदी यूनिकोड मंगल फॉन्ट में टंकित होनी चाहिए। लेख के प्रारंभ में लेख का सार अपेक्षित है जो अधिकतम 150 से 200 शब्दों के मध्य हो। सार में लेख लिखने का उद्देश्य अवश्य परिलक्षित होना चाहिए। लेख के अनुरूप 5 से 7 'की वर्ड' (बीज शब्द) भी लिखें। लेख को यथोचित उपशीर्षकों में विभाजित करके लिखें। लेख के अंत में निष्कर्ष अवश्य दें। शब्द सीमा 2500 से 3000 शब्दों की हो। आलेख के अंत में संदर्भ ग्रंथों की सूची ए.पी.ए. के प्रारूप में हो। लेख भेजते समय अपने नाम, पता, फोन नंबर एवं लेख का शीर्षक ई-मेल में अवश्य लिखें। इस आशय का एक घोषणा-पत्र प्रस्तुत कर दें कि लेख मौलिक है, अप्रकाशित है, भविष्य में इससे संबंधित किसी भी विवाद के लिए लेखक उत्तरदायी होंगे।

रचना के अंत में अपना पूरा डाक पता, मोबाइल नंबर और ई-मेल पता अंकित करें। संक्षिप्त जीवन-परिचय और फोटो भी भेजें।

संपादक

डॉ.पी.लता

शोध सरोवर पत्रिका

मूल्य : एक प्रति रु.100/-

वार्षिक शुल्क रु.400/-

पत्रिका के संबंध में अधिक जानकारी केलिए संपर्क करें - डॉ.पी.लता (संपादक, शोध सरोवर पत्रिका; मंत्री, अखिल भारतीय हिन्दी अकादमी), आरती, टी.सी. 14/1592, फोरस्ट ऑफीस लेन, ई-28, वषुतक्काटु, तिरुवनन्तपुरम - 695 014, केरल राज्य।

फोन : 0471-2332468, 9946679280, 9946253648

ई-मेल : akhilbharatheeyhindiacademy@gmail.com

वेबसाइट : www.shodhsarovarpathrika.co.in

संपादकीय

चंद्रयान-3 ने रचा इतिहास

आदिम मनुष्य जंगलों में रहते थे। वे जंगलों में भोजन की तलाश में पैदल चलते थे। सड़कें नहीं थीं। यातायात के साधन नहीं थे। जानवरों का शिकार करके खाना और गुफ़ाओं में रहना उनकी जीवन-रीति थी। आधुनिक काल के मनुष्य आदिम मनुष्यों की जीवन-रीति की कल्पना भी नहीं कर सकते। कालांतर में कई प्रकार के आविष्कार किये गये, सुख-सुविधाएँ बढ़ीं। पहले मनुष्य हाथ से जो काम करते थे, वे काम यंत्र करने लगे। विकास के पथ पर अग्रसर होते-होते मनुष्य चाँद तक पहुँचे, जिसकी आदिम मनुष्य कल्पना तक नहीं कर सकते थे।

पहले तो खोजी दृष्टिवाले मनुष्य जहाज़ यात्रा के ज़रिए नये-नये प्रदेशों में पहुँचे। सुगन्ध द्रव्य, पृथ्वी तले के खजाने जैसी चीज़ों की छानबीन करने की इच्छा ऐसी यात्राओं को प्रेरक रही। फिर सौर मंडल में मनुष्य को उपयोगी जगहों को खोजना शुरू हुआ। संपूर्ण दूरदर्शिता के साथ भारत के एक बोल्ड मिशन का परिणाम है 23-08-2023 को चंद्रयान -3 विक्रम लैंडर का चंद्र के दक्षिण ध्रुव पर उतरना। चाँद के दक्षिण ध्रुव पर सर्वप्रथम उतरने का श्रेय भारत से विक्षेपित चंद्रयान -3 को है।

यू एस ए (United States of America) का अंतरिक्ष अभियान संघ है आर्टिमिस अक्कोड्र्स (Artemis Accords)। भारत इसका सदस्य है। इसमें सदस्यतावाले सब राष्ट्रों को अपने अंतरिक्ष अभियान संबन्धी अनुभवों को परस्पर साझा करना है। इससे भारत को 'चंद्रयान-3 मिशन' से प्राप्त सूचनाएँ भारत को ही नहीं, अन्य राष्ट्रों को भी मार्गदर्शन करेंगी। आर्टिमिस योजना को शीघ्र ही स्वीकृति मिलने का एक कारण चंद्र अर्थव्यवस्था (Lunar economy) है। यू एस ए की डरपा (DARPA / Defense Advanced Research Projects Agency) की योजना है 'लूणार इकोणमी'।

चाँद में चाङ्ङसैट (Changesite) खनिज का पता लगाने के बाद चन्द्र पर्यवेक्षण में चीन की दिलचस्पी बढ़ी है। चंद्र में हीलियम (Helium) तथा जल की उपस्थिति चंद्र की ओर मनुष्य का आकर्षण बढ़ानेवाली बात है। चंद्र के दक्षिण ध्रुव में जल का ठोस रूप उपलब्ध है। क्योंकि यहाँ सूर्य किरणें न पड़नेवाला छायादार स्थान है। 'चन्द्रयान-1' अभियान को भी मिलाकर कुछ चंद्र पर्यवेक्षण अभियानों ने इस बात का समर्थन भी किया है, ताकि वहीं 'चन्द्रयान -3' का उतरना अहम बात है। ठोस पानी (Solid Water) मूल्यवान है। इसे श्वसन वायु, पेय जल, रॉकेट ईंधन जैसे रूपों में बदल सकते हैं। अंतरिक्ष वैज्ञानिकों की चंद्र में खनिज-खनन के परे भी एक संभाव्यता की प्रतीक्षा यह भी है कि आगामी अंतरिक्ष मिशनों के लिए एक दरम्यान पड़ाव सा भी 'चंद्र' उपयोग में आयेगा। वैज्ञानिक यानों को धरती तल से लाँच करने से भी सुगमता से चाँद तल से लाँच कर सकेंगे।

भारत से विक्षेपित 'चंद्रयान-1' की सफलता तथा 'चंद्रयान -2' की असफलता के बाद 'चंद्रयान -3' का लाँच किया गया। चाँद पर भारत का पहला अभियान था चंद्रयान-1, जिसका 22 अक्तूबर 2008 को आन्ध्रप्रदेश के श्रीहरिक्कोट्टा में स्थित 'सतीश धवान स्पेस सेंटर' से 'PSLV- C11' रॉकेट द्वारा लाँच किया गया। इस ऑर्बिटर अभियान से भारत का यह विश्वास सबल हुआ कि भारत चाँद में पहुँच सकेगा। 'चंद्रयान-1' चाँद की सतह से 100 कि.मी. ऊपर के केमिकल (रासायनिक) तथा मिनरलोजी (खनिजिकी) के

मानचित्र (Mapping) लेने केलिए चक्कर काटता रहा। मिशन के अहम उद्देश्यों की पूर्ति के बाद आगस्त 2009 में 'चन्द्रयान -1' के साथ संपर्क टूट गया। चंद्रयान -1 का 'मून इम्पाक्ट प्रोब' (MIP) चन्द्रमा के दक्षिण ध्रुव के पासवाली जिस सतह पर हार्ड लैंड किया था, उसको सरकार द्वारा 'जवाहर पोइंट' नाम - ए.पी.जे.अब्दुल कलाम द्वारा सुझाया गया नाम – दिया गया, क्योंकि लैंडिंग का दिन भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू का जन्म दिन था। सन् 1999 में भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने ही चंद्र अभियान को मंजूरी दी थी। उन्होंने ही मिशन को 'चंद्रयान' (Moon craft / Moon air craft) नाम दिया था।

चंद्रयान -2 (चंद्रयान -1 की सफलता के बाद) चाँद पर खोजबीन करनेवाला दूसरा अभियान था। इसे भी ISRO ने विकसित किया था। यह अभियान 'LVM3-M1' विक्षेपण यान द्वारा 22 जुलाई 2019 को श्रीहरिक्कोट्टा के 'सतीश धवान अंतरिक्ष केन्द्र' से विक्षेपित किया गया। यान में 'विक्रम लैंडर' लगाने में हुई छोटी – सी त्रुटि के कारण चन्द्रयान -2 का लैंडिंग फेल हुआ। हार्ड लैंडिग (क्राश लैडिंग) हुआ। चन्द्रमा पर क्राश हुआ जिससे लैंडर अपने निश्चित पथ से दूरी पर भटक गया। हार्ड लैंडिंग के बाद ही छ: पहियोंवाला 'प्रग्यान रोवर' विक्रम लैंडर से बाहर निकला। टकरा जाने के पहले ही (जबकि लैंडर लैंडिंग सतह से 400 मीटर की दूरी पर था) यान से संपर्क टूट गया था।

भारत का तीसरा चन्द्रयान मिशन – चन्द्रयान 3- सफल हुआ है। 14 जुलाई 2023 को श्रीहरिक्कोट्टा से 'चन्द्रयान-3' का लाँच किया गया। 23 अगस्त 2023 में शाम को 6.04 बजे को चंद्र में पूर्व निश्चित स्थान पर ही सोफ्ट लैंडिंग (नरम उतराव) किया गया। आधी रात के बाद 12.45 बजे को इसके 'विक्रम लैंडर' से 'रोवर' बाहर आया और चन्द्र की सतह पर उतरा। 'चन्द्रयान-3' की इस सफलता से भारत ने इतिहास ही रचा है। विभिन्न राष्ट्रों के 'मून मिशनों' के इतिहास में चंद्र पर सोफ्ट लैंडिंग करनेवाला चौथा राष्ट्र बना है भारत। इसके पहले सोफ्ट लैंडिंग किये राष्ट्र हैं – यू एस, पुराना सोवियत यूनियन और चीन। चंद्र के दक्षिण ध्रुव के पास लैंडर उतारनेवाला सर्वप्रथम राष्ट्र होने का श्रेय भी भारत को प्राप्त हुआ है। चन्द्रयान-3 से प्राप्त होनेवाली सूचनाएँ लोक राष्ट्रों को महत्वपूर्ण हैं। चाँद से जुड़े कई सवालों के जवाब इससे मिलेंगे, यही विश्व की आशा है। चाँद के दक्षिण ध्रुव क्षेत्र की जानकारी पाने में शास्त्र लोक जिज्ञासु है। शास्त्रज्ञों का अनुमान है कि यह जलगर्तोंवाला प्रांत है। अंतरिक्ष शासत्रज्ञों को भारत से सन् 2008 में विक्षेपित 'चन्द्रयान -1' से प्राप्त प्राथमिक सूचना संबन्धी अतिरिक्त जानकारियाँ 'चन्द्रयान-3' के लैंडिंग से प्राप्त होने की प्रतीक्षा है। सचमुच चांद में कई मानवोपयोगी तत्वों की उपस्थिति होने की अमूल्य जानकारी पाने की इच्छा में है शास्त्रलोक।

चन्द्रयान -3 के लैंडिंग के थोड़े दिनों के अन्दर ही कई जानकारियाँ पा चुकी हैं। 30 अगस्त 2023 को सलफर की उपस्थिति पहचान ली है। चंद्रयान -3 में लगाये 'प्रग्यान रोवर' में शामिल पठनोपकरण है Laser Induced breakdown spectroscopy (LIBS)। LIBS पेलोड लेसर किरणों (Payload Laser beams) के सहारे चाँद के तत्वों को - खनिजों आदि को - पहचान लेता है।

डॉ.पी.लता
संपादक, शोध सरोवर पत्रिका
मंत्री, अखिल भारतीय हिन्दी अकादमी।

महानगरीय जीवन की यथार्थ दास्तानः 'महानगर की मैथिली'

◆ डॉ.जयश्री ओ

सारांशः

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद देश में हुए औद्योगिक विकास के फलस्वरूप हर क्षेत्र में अनेक क्रांतिकारी परिवर्तन दर्ज हुए।देश में नगर तथा कस्बें महानगरीय जीवन के केन्द्र बन गये।लोग महानगरों के तथाकथित आधुनिक और प्रगतिशील वातावरण की ओर आकृष्ट होने लगे।हिन्दी के अनेक साहित्यकारों ने महानगरीय परिवेश में जीवन जिया है और उस परिवेश के यथार्थ चित्र अपनी रचनाओं में खींच लिया है। उनमें सुधा अरोडा का नाम विशेष उल्लेखनीय है। महानगरीय परिवेश से उनका गहरा संबन्ध रखा है। अतःअपनी रचनाओं में कलकत्ता, मुम्बई जैसे महानगरीय जीवन की अनेक विभीषिकाओं को अपने कथ्य का आधार बनाकर यथार्थता से अभिव्यक्ति दी है। उनकी कहानी 'महानगर की मैथिली' मुम्बई महानगरीय जीवन के विभिन्न पहलुओं को उद्घाटित करती है।

बीज शब्दः महानगरीय जीवन-विभीषिकाएँ- नौकरी पेशा लोग- आर्थिक तनाव- -संवेदनहीनता- आत्मसंघर्ष।

प्रस्तावनाः

'महानगर' शब्द 'महा' और 'नगर' इन दो शब्दों के योग से बना है। 'महा' का अर्थ है बहुत बड़ा और 'नगर' का अर्थ है शहर या क़स्बा। इस प्रकार महानगर का अर्थ है 'बहुत बड़ा शहर'। वर्तमान समय में भारत के अनेक प्रमुख नगर महानगरों में परिवर्तित होते जा रहे हैं। नाम के समान ही महानगरों की ज़िन्दगी गाँवों से बिल्कुल भिन्न होती है। महानगरों की आधुनिक चमक-दमक सबको अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। बहत्तर जीवन जीने की आशा-आकांक्षा सब श्रेणी के लोगों को यहाँ की ओर खींचती है। लेकिन यहाँ आने से स्पष्ट होता है कि महानगर बड़े लोगों की जगह है।

विषय-चयन

नगरीकरण और औद्योगीकरण की तीव्र गति के कारण देश के अधिकांश नगर या कस्बे महानगर बनते जा रहे हैं। महानगरों के गतिशील जीवन तथा भौतिक सुख-सुविधाएँ संपन्न लोगों को ही नहीं, नौकरीपेशा निम्न-मध्य वर्ग के लोगों को भी अपनी ओर खींच लेती हैं। लेकिन यहाँ की बढ़ती जनसंख्या और सिकुड़ते साधन उनका जीवन अत्यंत दूभर बना देते हैं। महानगरीय जीवन का यह विरोधाभास, जहाँ कुछ ज़्यादा पाने की आकांक्षा से आता है, पर यहाँ आने पर वह ऐसे चक्रव्यूह में फँसता है कि ज़िन्दगी के दोनों छोरों को आपस में मिलाने में असफल निकलता है। फलतःमहानगरों में अनेक समस्याओं से उन्हें जूझना पड़ता है। महानगरीय दबावों के कारण उत्पन्न अनेक विसंगतियों तथा जटिल मानसिक स्थितियों का मार्मिक चित्रण 'महानगर की मैथिली' नामक कहानी में हम देख सकते हैं। यथाः

आवास की समस्या

महानगरीय जीवन का अत्यंत आकर्षक तत्व है गगन चुम्बी अट्टालिकाएँ। लेकिन साधारण नौकरी-पेशा जनता केलिए महानगरीय जीवन को संकीर्ण बनानेवाली सबसे ब़डी समस्या है योग्य मकान की उपलब्धि की। सुधा अरोड़ा जी ने अपनी कहानी 'महानगर की मैथिली' में बम्बई जैसे महानगरों में मकान मिलने की तंगी, मकान तलाशने की परेशानियों, उपलब्ध मकान की कमियों तथा उससे उत्पन्न कठिनाईयों और समस्याओं के विविध पक्षों पर प्रकश डाला है। नौकरीपेशा दम्पति दिवाकर और चित्रा अपने सवा साल की बच्ची मैथिली को लेकर बंबई नगर पहुँचे। अब मैथिली की आयु साढ़े

चार की है। इसके बीच उनके रहने के घरों की संख्या चार बनी। उन्हीं के द्वारा बसे घर की हालत के बारे में लेखिका कहती हैं–"अभी तीन महीने पहले ही उन्होंने यह मकान बदला था। यहाँ एक ही इकलौता चौदह बाई बाहर का कमरा था, जिसे उन्होंने ड्राईंग-कम-डाईनिंग-कम-बेड़रूम बना रखा था।उस एक कमरे और छोटे-से लम्बे किचन में जहाँ सिर्फ एक आदमी के खड़े रहने भर की जगह थी, चित्रा-दिवाकर और मैथू जैसे अढ़ाई आदमी भी भीड़ नज़र आते थे। सुबह-सुबह जब आठ बजे तक सबको घर से निकलने की जल्दी होती थी,वे कमरे में चलते हुए एक-दूसरे से टकराते रहते थे। मैथु बार- बार उनके पैरों में आती थी। बस, इस नये मकान में एक यह आराम था कि छतें टपकती नहीं थीं वरना जो मकान वे छोड़कर आये थे, वहाँ रसोई में ऐन खाना पकाते समय कड़ाही के भीतर छत से बरसात का पानी टपकता था। यह जानते हुए भी कि टपकनेवाला द्रव सिर्फ बारिश का पानी ही है, खाना खाते हुए कैसी उबकाई- सी आती थी।"[1]

आर्थिक तनाव से त्रस्त मध्यवर्गीय जीवन

वर्तमान जीवन की सबसे बडी विडंबना है आर्थिक तनाव। मध्यवर्गीय आम आदमी आर्थिक विषमताओ के अन्दर पिसता जा रहा है, खासकर महानगरीय जीवन में। इसका उत्तम उदाहरण है दिवाकर-चित्रा दम्पतियों का जीवन। माह के अंत में मिलनेवाली कम आमदनी से महीने भर की रोटी और सामान जुटाने में असमर्थ निकलते हैं वे – "हमारे घर में महीने की आखिरी तारीखों का ऐलान करने केलिए दो-चार कप-प्लेट, गिलास टूटने बहुत ज़रूरी हो गए हैं। पड़ोसियों को पता कैसे चले कि महीना खत्म हो रहा है"।[2] नौकरी-पेशा निम्न मध्यवर्ग के लोग जितने कठिन परिश्रम करने पर भी अपनी परेशानियों से नहीं उबर सकते- "यह महानगर तो सिर्फ गरीबों केलिए दो जून की रोटी का जुगाड़ कर सकता है या व्यापारियों, पैसेवालों और अफ़सरों केलिए हैं। नौकरी-पेशा निम्न मध्यवर्ग यहाँ मरते दम तक अपनी परेशानियों से उबर नहीं सकता"[3]। साफ-सुधरे मकान तथा विश्वसनीय नौकर भी मिल जाने पर भी आर्थिक तंगी के कारण ये सुविधाएँ दिवाकर-चित्रा जैसी दम्पतियों के संबंध में असंभव बन जाती हैं। अतःभौतिक सुख के साधनों को बटोर लेने की अदम्य इच्छाएँ जीवन को विषम से विषमतर बना रही हैं। निरंतर बदलते घर तथा आया से परेशान बच्ची को देखकरअनेक बार चित्रा ने तय किया कि अपनी बच्ची की कीमत पर वह नौकरी नहीं करेगी। लेकिन महानगर का अर्थशास्त्र उन्हें मात दे जाता था- "गैर- कानूनी मकानों, अनियमित-कालीन नौकरी के ग़लत समझौतों, ज़िन्दगी की मशीनी रफ्तार और आवश्यकताओं के क्रूर अर्थगणित ने उन्हें एक असहाय, अव्यवस्थित नागरिक से उठाकर एक निहायत व्यावहारिक और स्वार्थी इंसान में तब्दील कर दिया था। क्षणिक आवेश में नौकरी छोड़ देने का निर्णय चित्रा ने दिवाकर को काफी जोश के साथ सुनाया था, लेकिन ममता का ज्वार उतर जाने पर वह दोनों की सम्मिलित आय में से अपने साढ़े चार सौ रुपये घटाकर किसी चमत्कारी मासिक बजट तक पहुँचने की कोशिश में सफल नहीं हो पायी थी। हर बार महानगर का अर्थशास्त्र उसे मात दे जाता था।"[4]

महानगरीय संवेदनहीनता

महानगर की मशीनी ज़िन्दगी की जटिल समस्याओं के असर ने मानव के मन और मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव ड़ाला है, जिससे जीवन-मूल्यों में भारी परिवर्तन हुआ है। गाँवों में जो आत्मीयता, संवेदना, अपनापन, तथा आपसी स्नेह होते हैं वही शहरों तक आते अजनबीपन, अकेलापन, घृणा एवं कुंठा के रूप में परिणत होते हैं। अतः गाँव तथा शहर से महानगर में आनेवाले लोग महानगरीय जीवन से अपने जीवन की तुलना करके स्वयं कुंठा और वर्जना का शिकार बन जाते हैं। अकेलापन से भरे महानगरीय जीवन के तनाव को लेखिका यों व्यक्त करती हैं-"हर साल गर्मी की छुट्टियों में मैथु

को लेकर अपने कस्बे मे ड़ेढ महीना गुज़ारते हुए उसे वहाँ के हर आदमी से ईर्ष्या होती थी। वहाँ का हर इंसान इतना संतुष्ट, सुखी और अवकाश-प्राप्त दिखाई देता था कि अपनी बम्बई की भागदौड़ वाली मशीनी ज़िन्दगी उसे कहीं भीतर से तोड़ती हुई महसूस होती थी। हर बार उस कस्बे से लौटने के बाद वह दिवाकर को बड़ी गंभीरतापूर्वक राय देती कि अब वह किसी और शहर में नौकरी तलाश करे"।[5] महानगरीय जीवन शैली में हर समय एक अफ़रा-तफ़री और अजीब सी जलदबाज़ी रहती है। यह जल्दबाज़ी लोगों में मानसिक दबाव उत्पन्न करती है। महानगर की व्यस्त और भागदौड़ भरी ज़िन्दगी के कारण आत्मीयता में कमी आने लगती है। सभी संबंध खुलकर व्यावसायिक बनते जा रहे हैं। विवेच्य कहानी में सुधाजी ने इसका मार्मिक चित्रण किया है। नौकरी पेशा माँ-बाप के संबंध में पूरे हफ्ते की भाग दौड़ में मिलनेवाली एक दिन की छुट्टी दिल को तसल्ली देनेवाली है। क्योंकि अपने बाल बच्चों के साथ मिल जुलकर रहने का सुवसर है यह। लेकिन महानगरीय जीवन-संदर्भ में ऐसे भावात्मक संबंधों की आर्द्रता लुप्त हो चुकी है। प्रस्तुत कहानी में छुट्टी के दिन अस्पताल में जाने का बहाना बनाकर दिवाकर अपनी नन्ही सी बच्ची मैथिली को ताराबाई के यहाँ छोड़कर साठ किलोमीटर का सफर तय करके अंग्रेज़ी फिल्म देखने में पत्नी को लेकर जाता है। वह इतना स्वकेन्द्रित बन चुका है कि अवकाश के समय अपने बच्चे के साथ रहने या उसे अपने साथ लेने में उसका मन नहीं लगता है। महानगरीय परिवेश में आत्मकेन्द्रित भावना ने मनुष्य को इतना स्वार्थी बना दिया है कि अपने सभी संबंधों को दर किनार करने में नहीं हिचकता है, चाहे वह संबंध पारिवारिक हो या सामाजिक हो। महानगरीय जीवन का सबसे बड़ा संकट है, मनुष्य का अमानवीकरण होना। इसका उत्तम उदाहरण है प्रस्तुत कहानी का दिवाकर। भीड़ भरी रेल यात्रा में दो बच्चों को लेकर खड़ी युवती को चित्रा अपना सीट देने पर दिवाकर उसे चिढ़ाता है कि वह बम्बई में रहते हुए भी इस महानगर को अपने तीन वर्गमील के क्षेत्र में फैले कस्बे की ही नज़र से देखता है।

कामकाजी नारी का आत्मसंघर्ष

कामकाजी महिलाओं को दोहरी चुनौती का सामना करना पड़ता है-घरेलू एवं बाह्य। वह घर और दफ्तर दोनों के बीच अपनी सेवाएँ देती हुई मशीन की तरह घूमती रहती है। दिन भर घर पर न रहने पर उन्हें अपने बच्चों की देखभाल भी एक समस्या बन जाती है। घर में बच्चों को नौकर को सुपुर्द करके जाना पड़ता है। चित्रा स्तनपान करानेवाली माँ है। उसके संबंध में अपने ममतामयी मातृत्व को संभालना एक बहुत वड़ी समस्या थी- "स्कूल में दिन-भर उसका मन नहीं लगा और वह छुट्टी होने के इंतज़ार में खोई-खोई-सी बैठी रही। सारा दिन उसके ज़ेहन में नन्हें-नन्हे कुलबुलाते हाथ-पैर और चमकती हुई आँखें घूमती रही थीं, जिनमें अभी मम्मी की पहचान भी नहीं उभरी थी। पहले ही दिन ज्यों ही मैथू का दूध पीने का वक़्त होता, वह अपने कपड़े भीगे हुए पाती। .....उधर मैथू अपनी बारीक आवाज़ में दूध केलिए रो रही होता, इधर चित्रा अपने भीगे हुए ब्लाउज़ से परेशान होकर अपनी छातियों को दबा-दबाकर गिलास में दूध निकालती और वाशबेसिन में गिरा आती।"[6] उसी प्रकार चित्रा का मातृत्व इस बात की इजाज़त नहीं देता कि नन्हीं मैथू को रविवार के दिन भी ताराबाई के सीलन भरे चौदह बाइ बारह के इकलौते कमरे में छोड़कर अंग्रेज़ी फिल्म देखने जाए। पर पति के बनाए प्रोग्राम में खलन न पड़े। इसलिए वह जाने केलिए मज़बूर है। वैसे बेटी की खातिर उसके भीतर कई बार नौकरी छोड़ने की चिंता भी उठी। वह महसूस करती है कि आया उसका पेट तो भर सकती है, पर माँ के हाथों का स्पर्श और दुलार उसे नहीं दे सकती। स्कूल जाने से पहले घरेलू मामलों में किसी सहायक की सख्त आवश्यकता और ऐसे किसी सहायक के अभाव से उप्पन्न घुटन के सम्मुख चित्रा अक्सर परेशान थी।

लेकिन उसके संबंध में साफ-सुथरी मकान तथा आर्थिक तंगी की समस्या से बढ़कर घर में अपने पति तथा बच्ची की इच्छा केलिए ठहरना ही अत्यंत गंभीर समस्या है–"सुबह मुँह-अन्धेरे पाँच बजे उठकर चित्रा के हाथ मशीनी अंदाज़ में रोज़मर्रा के काम निबटाते थे और तीन घण्टों में तीन टिफिन के डिब्बे और अपने-अपने सामान से लैस होकर, दरवाज़े पर ताला डाल- दो चाबियाँ अपने-अपने साथ ले, वे तीनों घर से बाहर निकल पड़ते थे। शाम पाँच बजे तक चित्रा स्कूल से लौटते हुए सब्जी-भाजी-ब्रेड़ खरीदती हुई घर पहुँचती थी। तब सुबह-की बिखरा घर समेटने और खाना बनाने-खाने तक वह बुरी तरह थककर चूर हो चुकती थी।.....रोज़ की इस बँधी-बँधाई रुटीन में कुछ अनकहे-अनजाने कारणों से दिवाकर और मैथिली दोनों कुठते रहते थे। चित्रा को इन दोनों मोर्चों तो सँभालना होता था। गुस्से और ज़िद में एक स्वभाव होते हुए बाप और बेटी में छत्तीस का रिश्ता था।"[7]

महानगरीय यांत्रिकता में टूटता हुआ बचपन

महानगरीय ज़िन्दगी की यांत्रिकता में पिसते बचपन का यथार्थ चित्रण 'महानगर की मैथिली' में मिलता है। एक साघारण नौकरीपेशा दम्पति के पाँच साल की छोटी लड़की मैथ्यू महानगर में निरंतर घर के बदलाव की चक्कर में पड़कर स्वस्थ पारिवारिक वातावरण एवं माँ- बाप के लाड़-प्यार से सदा वंचित रहती है।घरों से घरों की तरफ़ बदलते रहना और एक आया के हाथों दूसरी के हाथों में स्थानांतरित होना ही उसका जीवन बन गया है। किसी परिवार विशेष में पलने से प्राप्त सांस्कृतिक पारिवारिक पृष्ठभूमि से वह बिलकुल अपरिचित है। निरंतर बदलते महानगरीय परिवेश की अस्थायी सभ्यता ने उसे स्वस्थ विकसित व्यक्तित्ववाली होने नहीं दिया है। उसके संबंध में अपने बचपन की स्मृतियाँ केवल माँ के दूध के बदले पाउडर मिल्क के नियमित डिब्बों और रोज़ बदलती आयाओं के साथ एक लम्बे नाजायज एकाकीपन के अलावा और कुछ नहीं हैं।महानगरों के मशीनी जीवन में माँ-बाप के पास समय न रहना बच्चों की सहसे बड़ी समस्या का कारण बनता है।नौकरीपेशा माँ-बाप के संतान होने के कारण ही रात ही माँ के साथ रह सकती है।मैथिली हफ्ते में रविवार को अधिक पसंद करती है। पिता को छुट्टी गुरुवार को है तो माँ केलिए रविवार।ऐसी हालत में दोनों को उसे एकसाथ नहीं मिल पाती। यदि ऐसे दिन मिलें तो माँ-बाप किसी और कार्यक्रम में व्यस्त रहें। एक दिन दोनों उसे साथ लिये बिना अंग्रज़ी सिनेमा देखने जाते हैं।उस समय उस भोलेभाले बालक मन की पीड़ा अत्यंत वेदनाजनक है। मैथिली अपनी आयु से भी समझदार है। मानसिक व्यथा को अपने मन में सिमटकर, बिना चिल्लाये या हठ करके बिसरती रहती है-"पता नहीं, इस तरह बेआवाज़ रोने की आदत उसमें कब से आई थी। इस तरह रोते हुए वह अचानक अपनी उम्र से बहुत बड़ी लगने लगती थी! न मूँह से कोई आवाज़, न सिसिकियाँ, बस, आँखों से लगातार चुपचाप आँसू बहने लगते थे।"[8] उस बेचारी बालिका को किसी से शिकायत नहीं।ताराबई के धर से लौटी मैथू रात भर बुखार में तपती रही। उसकी बहुत तेज़ बीमारी के अवसर पर छुट्टी लेने केलिए माँ-बाप के बीच हुए तर्क ने तो उसके मन में गहरी चोट लगायी। वह पहले ही अपने कांपते हाथों से जूतों को पहनने की कोशिश करती है और ताराबाई के घर जाने की ज़िद करते हुए कहती है कि "नहीं, हम ताराभाई के घर जाएँगे।.....मम्मी,जाओ ऑफिस! पापा जाओ ऑफिस! हम भी जाएँगे। हमारे जूते दो, मम्मी।हमको मत पकड़ो, पापा.....।"[9]

उपसंहार

सुधा अरोड़ाजी अपनी कहानी 'महानगर की मैथिली' में महानगरों में फैली उपभोक्तावादी संस्कृति के कई पहलुओं पर दृष्टि डालते हुए महानगरीय दबावों के कारण उत्पन्न अनेक

विसंगतियों तथा उसकी जटिल मानसिक स्थितियों का उद्घाटन करती है। प्रगति की रफ्तार में मनुष्य सफलता की नई-नई मंज़िलों की खोज करते रहते हैं। किंतु गाँव या कस्बे से महानगर में आनेवाला व्यक्ति यहाँ अपना ताल-मेल नहीं बिठा पाता। आर्थिक दबाब उसके जीवन की नैसर्गिक अनुभूतियों और इच्छाओं का गला घोंट देता है। महानगर की ओर आकृष्ट होकर आनेवाले निम्न मध्य वर्ग के लोगों को कदापि यह अनुमान नहीं है कि उनकी ज़िन्दगी इतनी झंझट एवं निरीह बन जाएगी। महानगरीय परिवेश में बसे लोगो के व्यक्तिगत संत्रास के बखूबी चित्रण के साथ-साथ सुधाजी इस तथ्य पर बल देती है कि महानगरों के यांत्रिक और संवेदनहीन संसार में भावात्मक संबंध नहीं के बराबर होता जा रहा है। रात भर बुखार में तपती रही नन्ही सी बच्ची मैथू सुबह अपनी मम्मी को स्कूल केलिए तैयार होते देखकर आया के घर जाने केलिए हठ करते समय उस माँ को अपनी बेटी की हालत से बढ़कर यही चिंता सता रही है कि अब उसे स्कूल केलिए टैक्सी लेनी पड़ेगी। यानी आठ रुपये पैंसठ पैसे का अतिरिक्त खर्च। इसप्रकार हम निस्सन्देह कह सकते हैं कि सुधा अरोड़ाजी ने अपनी कहानी 'महानगर की मैथिली' में वर्तमान महानगरीय संवेदना की जो दास्तान की है वह अनुपम है।

संदर्भ ग्रंथ

1.नयी सदी की पहचानःश्रेष्ठ महिला कथाकार-ममता कालिया-लोकभारती प्रकाशन-2002, पृ.सं-95

2. वही- पृ.सं.92 3. वही- पृ.सं.99

4. वही- पृ.सं.101 5. वही- पृ.सं.98-99

6. वही- पृ.सं.100 7. वही- पृ.सं.97

8. वही- पृ.सं.94 9. वही- पृ.सं.105

◆असिस्टेंट प्रोफसर

हिंदी विभाग

सरकारी ब्रेन्नन कॉलेज

तलशेरी, कन्नूर, केरल।

श्री विष्णु प्रभाकर के 'सीमा रेखा' एकांकी में चित्रित जनतंत्र

◆ डॉ.राजू.सी.पी

हिन्दी साहित्य को एक नई दिशा देने में प्रख्यात साहित्यकार श्री विष्णु प्रभाकर की अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका है। देशभक्ति, राष्ट्रीयता तथा सामाजिक सरोकारों से जुड़ी उनकी प्रत्येक रचना में कोई-न-कोई संदेश छुपा रहता है। श्री विष्णु प्रभाकर का रचना-कर्म सन् 1931 से प्रारंभ होकर सन् 2008 तक लगभग 77 वर्ष तक निरंतर ज़ारी रहा। यह अपने आप में एक कीर्तिमान है। अपने लेखन के इस लंबे अंतराल में उन्होंने भारतीय समाज के विभिन्न संघर्षों और विभीषिकाओं को देखा-परखा। यही कारण है कि औपनिवेशिक शासन में मजहबी जुनून का भारतीय स्वभाव, मध्यमवर्गीय परिवारों के वैयक्तिक संबंध, आर्थिक समस्याओं से उत्पन्न विवशता, समकालीन सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक स्थितियों का अंतःसंघर्ष, स्त्री जीवन की त्रासदी, पारंपरिक संबंधों का भावनात्मक राग- अनुराग आदि अनकी रचनाओं के मुख्य विषय रहे। उन्होंने उपन्यास, नाटक, एकांकी, रेखाचित्र, यात्रा-विवरण आदि लिखकर हिन्दी साहित्य को समृद्ध बनाया। साहित्य अकादमी पुरस्कार से उन्हें सम्मानित भी किया। भारत सरकार ने भी हिन्दी साहित्य में उनके उत्कृष्ट योगदान के लिए उन्हें 'पद्म भूषण' तथा 'महापंडित राहुल सांकृत्यायन पुरस्कार' से अलंकृत किया।

आधुनिक हिन्दी नाटककारों में श्री विष्णु प्रभाकर प्रमुख हैं। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार हैं। नाटककार एवं एकांकीकार के रूप में वे बहुत लोकप्रिय हुए थे। उनकी रचनाओं में

आदर्श और यथार्थ का सुन्दर समन्वय मिलता है। 'सीमा रेखा' एकांकी में विष्णुजी ने जनतंत्र की बुराइयों की ओर संकेत किया है। पुलिस, नौकरशाही आदि सरकार के उपकरणों से जनता का संघर्ष जनतंत्र की एक जटिल समस्या है। सरकार और जनता के बीच एक सीमा रेखा खींचना असंभव है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद जनतंत्र की स्थापना हो गयी और जन नेताओं का शासन होने लगा। एकांकी की सविता आवेश में आज के नेताओं के बारे में कहती है- "जिन्होंने जनता का नेतृत्व किया, जनता के आगे होकर गोलियाँ खायीं, जो एक दिन जनता की आँखों के तारे थे, वे ही आज पुलिस के पहरे में जनता से मिलने जाते हैं"[1]। विष्णुजी बताते हैं कि जनतंत्र में सब स्वार्थी हो गये हैं, ताकत के अंधे हैं। लेकिन एकांकी में विष्णुजी जनतंत्र का उद्देश्य अपनी पात्र सविता द्वारा कहलाती हैं- "जनराज में शासक कोई नहीं होता। सब सेवक होते हैं"[2]।

'सीमा रेखा' एक राजनीतिक एकांकी है जो श्री विष्णु प्रभाकर द्वारा लिखा गया है। इस एकांकी में जनतंत्र के विभिन्न पहलुओं को विस्तार से दर्शाया गया है। एक ओर इसमें जनता के द्वारा चुने गए नेताओं के लिए बढ़ते राजनीतिक दबावों और संघर्षों का वर्णन है, तो दूसरी ओर इसमें सत्ताधारी शक्ति के द्वारा जनता की स्वतंत्रता और अधिकारों को लेकर की जानेवाली आम राय के विरोध का भी उल्लेख है। एकांकी में विभिन्न व्यक्तियों के माध्यम से देश के लोगों के दर्द और संघर्ष को दर्शाया गया है। साथ ही, इसमें दर्शाया गया है कि जनता को सत्ताधारी शक्तियों के सामने लड़ने के लिए सामाजिक एकता और संघर्ष की ज़रूरत होती है। इस एकांकी में जनतंत्र की सुरक्षा के साथ देश का संरक्षण करनेवाले व्यक्तियों का महत्व भी बताया गया है। यह एकांकी जनतंत्र के महत्वपूर्ण विषयों पर विचार करने के लिए एक अच्छी शुरुआत है।

'सीमा रेखा' एकांकी में उन्होंने जनतंत्र शासन में राजनीतिक नेताओं, व्यापारियों और पुलिस अधिकारियों का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया हैं। आजकल राजनीतिज्ञ और शासक वर्ग समस्याओं का समाधान करने के बदले उन्हें और भी जटिल बनाते हैं। इस एकांकी में व्यापारी लक्ष्मीचन्द्र के तीन भाई हैं - उपमंत्री शरतचन्द्र, जन नेता सुभाषचन्द्र और पुलिस अधिकारी कैप्टन विजय। शहर में दंगा होता है। उसे दबाने के लिए पुलिस को रामगंज में गोली चलानी पड़ी। इस संबन्ध में लक्ष्मीचन्द्र के घर के लोग इसके विरोध में और समर्थन में बातें करते हैं। उपमंत्री शरतचन्द्र कहते हैं कि कानून तोड़नेवालों और पुलिस पर पत्थर फेंकनेवालों पर कभी-कभी पुलिस गोली चलाना स्वाभाविक है। उनकी पत्नी अन्नपूर्ण पुलिस कार्रवाई का विरोध कर रही थी। उस समय तीसरे भाई सुभाषचन्द्र की पत्नी सविता आकर कहती है - "पत्थर फेंके होते तो इसका अर्थ यह नहीं कि पत्थर के जवाब में गोली चला दी जाए । गोली उन्हें आत्मरक्षा केलिए नहीं दी जाती, जनता की रक्षा के लिए दी जाती है"[3]। जन नेता सुभाष चन्द्र की पत्नी सविता का यह कथन ध्यान देने योग्य है। पत्थर के बदले में निहत्थे लोगों पर गोली चलाना अपराध है। जनतंत्र में जनता की रक्षा करना पुलिस का कर्तव्य है। उन्हें गोली चलाकर मारना सचमुच अपराध है।

प्रस्तुत एकांकी 'सीमा रेखा' में जनतंत्र के गुण-दोष की चर्चा की गयी है। शहर में दंगा हो गया था। उसे दबाने के लिए पुलिस ने गोली चलायी। व्यापारी लक्ष्मीचन्द्र के भाई हैं विरोधी दल के जन नेता सुभाष चन्द्र और पुलिस अधिकारी कैप्टन विजय। जननेता सुभाष पुलिस की आलोचना करते हैं। लक्ष्मीचन्द्र और उपमंत्रि शरत पुलिस की कार्रवाई का समर्थन करते हैं। सुभाष के मत में राज्य की रक्षा करते-करते प्राण देना चाहिए। प्राण लेने का अधिकार किसी को नहीं हैं। इस वक्तव्य को उपमंत्री शरत केवल आदर्शवाद कहते हैं। तब सुभाष

उनसे कहते हैं कि "कर्तव्य का पालन करते हुए, मरना यदि आदर्शवाद है तो मैं कहूँगा कि विश्व के प्रत्येक नागरिक को ऐसा ही आदर्शवादी होना चाहिए"[4]।

'सीमा रेखा' एकांकी में श्री विष्णु प्रभाकर ने भारत का राजनैतिक विषय प्रस्तुत किया है। जनतंत्र के शासन में, जनता के राज में जनता की प्रतिष्ठा होती है। जनता की रक्षा करना अधिकारियों का कर्तव्य है। शहर में दंगा हो गया। उसे दबाने के लिए पुलिस ने गोली चलायी। अनेक लोग घायल हो गये। इस संबन्ध में व्यापारी लक्ष्मीचन्द्र और उनके भाई उपमंत्री शरतचन्द्र तथा पुलिस अधिकारी विजय के बीच चर्चा हो रही है। लक्ष्मीचन्द्र के मत में दंगा करनेवाले गुण्डे होते हैं। उन्हें दबाना पुलिस का कर्तव्य है। उनका भाई उपमंत्री शरतचन्द्र कहता है कि वे सब गुण्डे नहीं होते। कुछ गुण्डों के बहकावे में आकर साधारण लोग सरकार के विरुद्ध दंगा करते हैं। तीसरे भाई जननेता सुभाष की पत्नी इससे सहमत नहीं होती। वह आश्चर्य प्रकट कर पूछती है कि लोग गुण्डों के बहकावे में आकर दंगा करते हैं। आप कल तक लोगों के नेता थे। लोग आपकी बात क्यों नहीं सुनते? इसका कारण भी सविता बताती है- "आप अपना संतुलन खो बैठे हैं। आप निरंकुश होते जा रहे हैं। आप अपने को केवल शासक मानने लगे हैं। आप भूल गये हैं कि जन-राज में शासक कोई नहीं होता। सब सेवक होते हैं"[5]। शासक वर्ग और उनके कर्मचारी राज्य की रक्षा के लिए अपना जीवन देने केलिए तैयार नहीं होते। वे अपनी सुरक्षा के लिए दूसरों को मार डालते हैं। आदर्शवादी सुभाष का समर्थन करने उस घर में उनकी पत्नी सविता के सिवा और कोई नहीं है।

जनतंत्र में सब लोगों का समान अधिकार है। कोई किसी पर शासन नही करता। देश की और देशवासियों की रक्षा के लिए सबको मिलकर सेवा करनी है इसलिए सब सेवक होते हैं। एकांकी में लक्ष्मीचन्द्र का बेटा अरविंद बाज़ार जा रहा था। वह चिल्लाया था - दंगा नहीं करता, मैं बाज़ार जाता हूँ । किसी ने उसकी आवाज़ नहीं सुनी। किसी ने उसकी ओर नहीं देखा। पुलिस को गोली चलाने की आज्ञा लक्ष्मीचन्द्र का भाई विजय ने दी थी। पहले लक्ष्मीचन्द्र ने पुलिस के काम का समर्थन किया था। किन्तु गोली से अपने पुत्र की मृत्यु का समाचार सुनकर वे टूट जाते हैं। विजय और उपमंत्री शरत को वे कोसते हैं। अपने पुत्र की मृत्यु की खबर सुनकर लक्ष्मीचन्द्र दुःख और क्रोध से कहते हैं "सब अंधे हैं! ताकत के अन्धे! जो सामने आता है, उसे कुचल देना चाहते हैं। चाहे वह धूल हो, चाहे पत्थर....."[6]

सरकार के शासन के उपकरणों से जनता का संघर्ष जनतंत्र की एक जटिल समस्या है। एकांकीकार यह कहना चाहते हैं कि जनतंत्र में जनता देश की संपत्ति है। जनता की क्षति देश की क्षति है। शहर में दंगा दबाने के लिए पुलिस ने गोली चलायी। पुलिस की गोली से व्यापारी लक्ष्मीचन्द्र के दस साल के पुत्र अरविंद की मृत्यु हुई। लक्ष्मीचन्द्र अपने भाई उपमंत्री शरत तथा पुलिस अधिकारी विजय को इसका दोषी ठहराते हैं। इस घटना के बाद विजय ने गोली चलाने से इनकार कर दिया। सुभाष जनता को शांत करने केलिए शरत को दंगाग्रस्त जगह पर ले जाता है। कुछ समय बाद घायल होकर मंत्री शरत आकर कहता है कि भीड़ बेकाबू हो गयी थी और सुभाष और विजय की मृत्यु हुई। विजय, सुभाष और अरविंद की लाशें घर में लायी जाती हैं। शरत के मत में अरविंद और सुभाष जनता की क्षति है तो विजय सरकार की क्षति है। उनकी पत्नी अन्नपूर्ण के मत में वे तीनों घर की क्षति है। तब सुभाष की पत्नी सविता कहती है कि "यह घर की नहीं, सारे देश की क्षति है। देश क्या हमसे और हम क्या देश से अलग हैं?"[7]

श्री विष्णु पभाकरजी ने अपने लोकप्रिय

एकांकी 'सीमा रेखा' में जनतंत्र, सरकार तथा जनता का विश्लेषण किया है। एकांकी के माध्यम से विष्णुजी बताते हैं कि जनतंत्र में शासक कोई नहीं होता। सब सेवक हैं। जनतंत्र में जनता की प्रतिष्ठा होती है। कर्तव्य का पालन करते हुए मरना आदर्शवाद है। जनता को कानून हाथ में नहीं लेना चाहिए। नेता लोग जनता से छिपकर रहना तथा पुलिस की रखवाली में जनता के सामने प्रकट होना उचित नहीं हैं। जनता और देश की रक्षा करना शासकों का दायित्व है। एकांकी में श्री विष्णु पभाकरजी का कहना है-जनतंत्र में सरकार और जनता के बीच कोई सीमा रेखा नहीं होती या नहीं खींच सकती।

संक्षेप में, श्री विष्णु प्रभाकर के राजनीतिक एकांकी 'सीमा रेखा' में जनतंत्र का उद्देश्य व्यापक रूप से स्पष्ट किया गया है। इस एकांकी के माध्यम से उन्होंने जनतंत्र की महत्वपूर्ण विशेषताओं को दर्शाया है। उनके इस एकांकी का उद्देश्य था कि जनतंत्र में संवैधानिक सीमाओं से आगे बढ़कर, विचारों और व्यक्तियों की स्वतंत्रता और न्याय की राह पर अधिकारों की रक्षा की जाए। उन्होंने इस एकांकी के माध्यम से स्पष्ट किया है कि जनतंत्र में लोगों को न सिर्फ विचारों की आज़ादी होती है, बल्कि साथ ही वे अपने अधिकारों के लिए लड़ सकते हैं और न्याय की माँग कर सकते हैं। इस एकांकी के माध्यम से, श्री विष्णु प्रभाकर ने जनतंत्र के महत्वपूर्ण सिद्धांतों, जैसे स्वतंत्रता, न्याय, और विचारों की आज़ादी को अधिक महत्वपूर्ण बनाया है। इस एकांकी से उन्होंने एक संवेदनशील समाज का विवरण दिया है, जहाँ सभी लोगों के अधिकारों का समान रूप से सम्मान किया जाता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. एकांकी नवरत्न, संपादक, डॉ. काबले अशोक, ज्योति प्रकाशन, इलाहाबाद, 2009.
2. प्रतिनिधि एकांकी, संपादक डॉ.दशरथ ओझा; शिक्षा भारती प्रकाशन, दिल्ली; 2014.
3. 21 श्रेष्ठ कहानियाँ, विष्णु प्रभाकर; डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.)लि. नई दिल्ली; 2020.

संदर्भ

1. प्रतिनिधि एकांकी, संपादक- डॉ.दशरथ ओझा; शिक्षा भारती प्रकाशन, दिल्ली, 2014.पृष्ठ सं.10
2. वही, पृष्ठ सं.11
3. वही, पृष्ठ सं.09
4. वही, पृष्ठ सं.14
5. वही, पृष्ठ सं.11
6. वही, पृष्ठ सं.19
7. वही, पृष्ठ सं.25

◆ अध्यक्ष,
हिन्दी विभाग,
सेंट अलोयष्यस कॉलेज, एलत्तुरुत्त,
तृश्शूर, केरल-680611।
मोबइल: 8330080066,
ईमेल: drrajucp@gmail.com

समकालीन कविता-पट में पितृसत्तात्मक समाज की स्त्री

◆ डॉ.सिंधु एस. एल

शोध सार

स्त्री आत्मचेतना को प्रकट करने केलिए पुरुषों की सहायता जबसे नहीं चाहती तबसे वह विचारों और कर्मों में स्वतंत्र है । लेकिन भारत के पितृसत्तात्मक समाज में पुरुषों को अपने जीवन चलाने का उपयुक्त एक पात्र मात्र है स्त्री । उसकी अपनी अस्मिता मानने और बनाये रखने केलिए पुरुष सत्ता तैयार नहीं होती है। भारतीय समाज इतना जटिल है कि इसका स्तरीकरण वर्ग , लिंग , जाति आदि के आधार पर होता

है। स्त्री – पुरुष की समता की समस्या हमेशा एक सवाल बनकर ही रहती है । समता का नारा समाज में बुलन्द होने पर भी उसकी स्थापना आसान नहीं है । लड़की को अपने जनम से ही लिंग स्तरीकरण की समस्यायें झेलनी पड़ती हैं। बेटी, पत्नी, माँ आदि भूमिकाओं में वह केवल सहनशील पात्र है। एक साधारण परिवार में लड़कियों का जीवन, सपने देखने से वंचित है। उसे हरएक दिन काटने का रास्ता खोजना है। उसका बचपन खेलने का नहीं ,पढ़ने का नहीं, सिर्फ काम करने का है । पाँच बरस की उम्र में ही वह घर संभालने लगती है । उसके जीवन की मिठास तबसे ही नष्ट होती है । पुरुषसत्तात्मक परिवार में बेटी की जगह कोई खास नहीं , वह हमेशा चूल्हे के पास बैठकर पल बिताती है। समकालीन कविताओं में पुरुष सत्ता के विभिन्न परिदृश्य हैं ।

मूल आलेख

भारतीय समाज में स्त्री को पुरुष की अनुगामिनी या दासी मानता था। पुरुष सत्ता-प्रधान समाज में वह हमेशा चार दीवारों के अंदर बंदिनी बन रह गयी । समकालीन कविता में नारी शोषण के विभिन्न दृश्य चित्रित हैं । बेटी, पत्नी, माँ आदि विभिन्न भूमिकाओं में वह अपनी भूमिका परिवार में निभाती है । जो स्त्री अपनी सुरक्षा पति के पास मानती है वह हमेशा उसकी प्रतीक्षा में है। उसका प्यार और लगन पति के प्रति ज़्यादा है। पुरुष के हाथों में अपना जीवन सौंपनेवाली नारी प्रेम की लालिमा से आच्छादित है, लेकिन जब उसकी प्रतीक्षाएँ विफल होंगी तब वह निराशाग्रस्त हो जाती है। स्त्री अपने को असुरक्षित मानने से उसका शोषण शुरू होता है , उसका डर ही उसे पिछड़ा करता है । स्त्री को घर के सारे काम करने पड़ते हैं । उसका हाथ बंटाने केलिए कोई भी नहीं है , फिर भी संसद में उसकी तादाद बढ़ाने की चर्चाएँ हो रही हैं ।

'एक पोंचा लगा रही है
एक बर्तन मांज रही है
एक कपड़े पछीट रही है
एक बच्चे को बोरे पर सुलाकर सड़क पर रोड़े बिछा रही है
एक फर्श धो रही है और देख रही है राष्ट्रीय चैनल पर पैशन परेड
एक पढ़ रही है न्यूज़ कि संसद में बढ़ायी जाएगी उनकी तादाद '[1]

स्त्री होने के कारण ही उसे अपनी अस्मिता दूसरों की अस्मिता के साथ जोड़ना पड़ता है । जीवन के विभिन्न आयाम उस केलिए हमेशा संघर्षरत हैं । वह बचपन से लेकर अंतिम क्षण तक अपनी ज़मीन की तलाश में है । शिक्षित एवं कामकाजी नारी भी इससे भिन्न नहीं है । 'लड़की का घर' नामक कविता में मदन कश्यप यही समस्या व्यक्त करते हैं कि लड़कियों का अपना घर नहीं है,

घर में पैदा होती है लड़की
और बार बार जकड़ी जाती है –
घर में ही रहने की हिदायतों से
फिर भी घर नहीं होता लड़की का...'[2]

बचपन से लड़कियाँ यही सुनकर आती हैं कि एक दिन तुम्हें दूसरे घर जाना है, ठीक तरह से जाओ। जिस घर में उसका बचपन बीता बाद में वह पराया होने की विडम्बना लड़कियों को भोगनी पड़ती है।

सविता सिंह की कविता विमला की यात्रा में अपने पति की मृत्यु के बाद पिता के घर जानेवाली औरत को चित्रित किया गया है,

'उसे जाना है आज शाम चार बजे रेलगाडी से
जाना है पति के घर से इस बार पिता के घर
एक घर से दूसरे घर जाते हैं वही
नहीं होता जिनका अपना कोई घर ।' [3]

भूख जीवन की सबसे बड़ी समस्या है और यही सबसे बड़ी सच्चाई है । स्त्रियों को हमेशा भूख की आग खानी पड़ती है । खेतों में काम करनेवाली स्त्रियाँ अपनी भूख को भूलने के लिए गाती हैं है । ऐसा कहा गया – लेकिन अन्न के बिना भूख कैसे मिटाएगी ।यह दुनिया का खोखलापन है ।

'वे जब खेतों में
फसलों को रोपती काटती हुई–
गाती हैं गीत
भूल जाती हैं ज़िन्दगी के दर्द
ऐसा कहा गया है
किसने कहे हैं उनके परिचय में
इतने बड़ेबड़े झूठ -
किसने ?'[4]

पिंजड़े में पड़ी चिड़िया की तरह नारी मुक्ति की

कामना करती है, इस केलिए पिंजड़ा तोड़ना ही पड़ता है। परंपरा से चली आनेवाली रिवाज़ों के विरोध में उसे आवाज़ उठाना पड़ता है।

'मिल जानी चाहिए अब मुक्ति स्त्रियों को
आखिर कब तक विमर्श में रहेगी मुक्ति
बननी चाहिए एक सड़क, चलें जिस पर सिर्फ स्त्रियाँ ही'[5]

पुरुषसत्तात्मक समाज में समता के अभाव के कारण उसे आरक्षण की आवश्यकता पड़ती है। हाशिएकृत समाज में स्त्री का प्रातिनिधित्व बहस और समर्थन से होने की अवस्था है ।

'महिलाओं को प्रतिशत आरक्षण33
विधानसभा में
संसद में
दावे प्रतिदावे –
बहस और समर्थन
नामांकन दाखिल
पुरुषों का बोलबाला
महिलाएँ फिर हाशिए पे ।' [6]

पहले पुरुषसत्तात्मक समाज में स्त्रियों को बोलने का भी कम अधिकार था तब प्रश्न पूछने का अधिकार कैसे मिलेगा ? परंपरा से आनेवाले रास्ते को काटकर एक अलग रास्ते में सोचने केलिए भी उसे पाबंदियाँ थीं, चंपावैद कहती हैं ,

'मेरी कविताओं को पढ़
लोग कहते हैं कुछ अलग सी हैं
मानो किसी नीच जाति की हों
मानो कह रहे हों स्त्री होकर इतनी हिम्मत
मानो अपने ढंग से स्त्री के कहने को रद्द कर रहे हों
मानो कह रहे हों पागल हो
आदमी के बारे में ऐसा मत लिखो
मानो मैंने कोई घोर अपराध या पाप कर लिया हो
मानो कह रहे हों इकट्ठे मिलकर एक ही आवाज़ में
लिखना छोड़ो समाज के कानूनों में खलबली मत मचाओ
रसोई में रोटी पकाओ और चुप रहो
वही नारीत्व है बोलना अश्रद्धा है
स्त्री हो तो प्रश्न मत उठाओ ।'[7]

घर में अपनी माँ से ही लड़कियाँ स्तरीकरण का अनुभव भोगती हैं । लड़कों के बाद ही लड़कियों को 'भोजन मिलता है, वह भी थोड़ा।
माँ जब केला देती है
पहले भाई को फिर तुमको थोड़ा सा
तुम कुछ नहीं बोलती
क्योंकि तुम लड़की हो.....'[8].

'माँ की सीख' नामक कविता में पुरुष सत्ता के नियमों का पालन करने केलिए स्त्री कैसे एक उपकरण बनती है, इसका स्पष्ट चित्रण है। अपनी माँ से ही पुत्री को मिलनेवाला पाठ यह है कि 'ऐसा मत करो, वैसा मत करो'। पुरुष द्वारा निर्मित नियम स्त्रियों पर थोप जाते हैं।

'लड़की हो खाना बनाना और सबकुछ सहना सीखो
जो कहा जाए बिना मुँह बनाये करती जाओ
माँ की मत सूची लंबी थी...'।[9]

संतोष चतुर्वेदी की कविता 'माँ का घर' भी पितृसत्तात्मक समाज की माताओं की समस्याएँ प्रस्तुत करती है,

'माँ और उनकी माँ और उनकी माताओं के नाम पर
हर जगह दिखायी पड़ी एक अजीब तरह की चुप्पी । '[10]

आँखों में पानीवाली पुरानी नारी से सामयिक काल की नारी तक आने पर सशक्तीकरण का बल उसकी आँखों में देखने की कोशिश हम करते हैं । प्रेमचन्द गाँधी की कविता 'सदियों से रोती हुई स्त्री' में कवि लिखते हैं ,

'सदियों से रोती आयी है एक स्त्री इसी तरह
कविता में उसकी रुलाई का
कोई अनुवाद संभव नहीं हुआ मुझसे
उसकी कातर आँखों में नहीं तैरते
प्रेम प्रणय के स्वप्न भरे दृश्य –
जाने कितने दरवाज़ों में बन्द हैं
उसकी पीड़ा और दुखों की गठरियाँ बेहिसाब
जाने कितनी दीवारें खड़ी कर दी हैं उसने
अपनी दुनिया के इर्द गिर्द कि -
उसकी रुलाई सिर्फ सपनों में ही सुनाई देती है ।'[11]

हमेशा रसोई से जुड़ी हुयी है औरत, माँ कहाँ है पूछने पर यही उत्तर मिलता रहता है कि माँ रसोई में है। धनिया या हल्दी की गंध से औरत अपनी जगह व्यक्त करती है। पितृसत्तात्मक इस देश में बेटियाँ सबसे अधिक

प्यार पिता से करती हैं। सविता सिंह ने अपनी एक कविता 'प्रेम करती बेटियाँ' में इसी ओर इशारा करती हैं ,

'आज भी बेटियाँ कितना प्रेम करती हैं पिताओं से
वही जो बीच जीवन के उन्हें बेघर करते हैं
धकेलते हैं जो उन्हें निर्धनता के अगम अन्धकार में।' [12]

स्त्री पुरुष से प्रेम चाहती है। लेकिन पुरुषसत्ता स्त्री को केवल प्रेम का नहीं भोग की वस्तु मानने से उसकी संकल्पनाएँ पुरुषसत्ता के नीचे दबोकर उसकी पहचान ही नष्ट होती है, इसलिए उसको कहना पड़ता है

'सोचकर बहुत मैंने कहा उससे
मैं किसी की औरत नहीं हूँ
मैं अपनी औसत हूँ
अपना खाती हूँ
जब जी चाहता है तब खाती हूँ
मैं किसी की मार नहीं सहती
और मेरा परमेश्वर कोई नहीं ।[13]

प्रेम और सत्ता का मेल कभी नहीं हो सकता । नारी अपने पुरुष से प्रेम चाहती है ,

'वह हर भूमिका में तुम्हारे भीतर छिपा
प्रेमी ढूँढती है
तुम जाने क्या -क्या चाहते हो स्त्री से '[14]

पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की भूमिका रसोई तक सीमित थी। सबको खाना-पिलाना ही उसका कर्तव्य था। अंत में उसको खाने केलिए कुछ भी शेष नहीं था। उसने कुछ खाया है या नहीं- यह पूछनेवाला भी नहीं था। उसके बारे में कोई सोचता भी नहीं ।

'माँ थी सबके बाद खानेवाली
जिसकेलिए दाल नहीं
देचकी में बची थी हलचल
चुल्लू भर पानी की
और कटोर के चन्द्रमा जैसी दान में भाफ –
रोटी की छाया थी ।'[15]

नीलेश रघुवंशी की कविता 'चाँद की मसखरी' में स्त्री के भावुक मन का चित्रण है ,

'सजी सँवरी औरतें चाँद को पूजकर
जाने को होती हैं अपने उन के पास
जो पाँव पसारे बैठक में टी देख रहे कि. वी.
चाँद उन्हें देख दबाता है आँख ।'[16]

सदियों से यही विश्वास है कि पुत्र के जनम से मात्र मोक्ष-प्राप्ति संभव है । पितृसत्तात्मक समाज में बेटों की माँ बनने से मात्र वह घर की श्रेष्ठ बहू बनती है। नारियाँ ही दो तरह से इस विश्वास का शिकार बनती हैं। एक तरह से बेटी को जनम देने से और दूसरी तरह से खुद औरत बनने से।

सिसकियाँ केवल नारी की हैं, पुरुष चाहते हैं कि स्त्री का जन्म सब सहन करने केलिए है। युग बदलने पर भी इसमें परिवर्तन हुआ नहीं । सबसे पहले परिवर्तन पुरुसोन के मन में होना चाहिए, लेकिन ऐसा होता नहीं।

'हर आँगन से उठती सिसकी
सदियों से खामोश है
आँगन से आँगन तक के सफर में
गुज़रती रहीं सदियाँ
तमाम उम्र के बेगार का अंत
सचमुच बहुत भयावह है
पाषाण युग से कंप्यूटर युग तक
सफर तय कर चुका संसार
पर आधी दुनिया अभी तक
आँगन से आँगन तक के सफर में ही दफन है ।' [17]

पुरुषसत्तात्मक प्रवृत्ति के संबंध में सुजाता की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

'तुम्हें चाहिए एक औसत औरत
न कम न ज़्यादा
बिलकुल नमक की तरह
उसकी जवानी हो
उसके दिल भी हो।'[18]

नारी का स्थान नमक की तरह है। उसका होना ज़रूरी , है। समय बीत जाने पर भी नारी कालकोठरी में है। अपनी चेतना प्रदीप्त करने की चाहत उस में है । आत्मविश्वास रखनेवाली नारियाँ किसी भी सत्ता के नीचे पददलित होना नहीं चाहती हैं ।

निष्कर्ष

पितृसत्तात्मक समाज की औरतें आज भी अपनी अस्मिता की तलाश में ही हैं । शिक्षित नारियाँ भी शोषण के शिकार हैं । अधिकार और बल से पुरुष जिस समाज का नेतृत्व लेते हैं वहाँ नारी को समान अधिकार मिलना असंभव है । उसको केवल रसोईवाली

मानने के विचार से बाहर आकर उसको सहधर्मिणी मानना पुरुषों केलिए दूर की बात है । इसलिए आज भी अधिकांश औरतों को घर में, समाज से हाशिएकृत होकर जाना पड़ता है। कविगण भी प्रतिरोधी स्वर में इस विषय पर अपने वैचारिक पक्ष प्रकट करके आते हैं।

संदर्भ

1. रात में हारमॉणियम, उदय प्रकाश, वाणी प्रकाश, नयी दिल्ली, 2020।
2. नीम रोशनी में, मदन कश्यप, आधार प्रकाशन, हरियाणा, 2000।
3. विमला की यात्रा, सविता सिंह। www.Kavitakosh.org/kk
4. नगाडे की तरह बजते शब्द, निरमाला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, 2004।
5. स्त्री विमर्श, नीलेश रघुवंशी। www.Kavitakosh.org/kk
6. क्षमा याचना, लीलाधार मंडलोई, दुष्यंत कुमार स्मारक पाण्डुलिपि संग्रहालय, भोपाल, 2007।
7. आवाजें, चंपावैद, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2011।
8. वही ।
9. वही ।
10. माँ का घर, संतोष कुमार चतुर्वेदी। www.Kavitakosh.org/kk
11. सपनों में सोती हुई स्त्री, प्रेमचंद गाँधी- www.Kavitakosh.org/kk
12. मैं किसकी औरत हूँ, सविता सिंह, www.Kavitakosh.org/kk
13. वही।
14. क्या चाहते हो स्त्री से, अनुराधा सिंह। www.Kavitakosh.org/kk
15. उजाड में संग्रहालय , चंद्रकांत देवताले , राजकमल प्रकाशन, न्नायी दिल्ली, 2003।
16. अंतिम पंक्ति में, नीश रघुवंशी, किताब घर, दरियागंज, नयी दिल्ली, 2008।
17. कविता, अनामिका तिवारी, वागर्थ,मार्च 200, पृ.104।
18. तुम्हें चाहिए एक औसत औरत, सुजाता। www.Kavitakosh.org/kk

◆ अध्यक्षा, हिन्दी विभाग,
सरकारी विक्टोरिया कॉलज,पालक्काड , केरल ।
678001

'एक सत्य हरिश्चंद्र' नाटक में अभिव्यक्त सामाजिक क्रांति

◆ डॉ. एलिसबत जॉर्ज

सार- दलित या कमज़ोर वर्ग सदियों से अत्याचार का शिकार बनता रहा है। सत्यवादी हरिश्चंद्र ऐसे शोषित, पीड़ित विभाग का प्रतिनिधित्व करता है, जो चुपचाप अन्याय का सहन करता रहा। लेकिन अब समय बदल गया है। अन्याय के प्रति वे सचेत हो गए हैं। अन्याय का सहन करना उसका समर्थन करना है।

बीज शब्द- शोषण, प्रतिरोध, विद्रोह।

लक्ष्मीनारायण लाल आधुनिक हिन्दी नाटक और रंगमंच को नई पहचान देनेवाला नाटककार हैं। नाटक को किताबी कैद से मुक्त कराके रंगमंच से साक्षात्कार कराने का महत्वपूर्ण कार्य उन्होंने किया। उनके नाटक कथ्य,शिल्प तथा मंचीयता की दृष्टि से वैविध्यपूर्ण एवं प्रयोगधर्मी रहे हैं। आधुनिक जीवन की गतिविधियों और सूक्ष्म मनोवृत्तियों को उन्होंने बड़ी जीवंतता के साथ नाटकों में प्रस्तुत किया। समकालीन राजनीतिक,

धार्मिक, सामाजिक समस्याओं को पुराण कथाओं के सहारे जनता के समक्ष लाने का प्रयास उन्होंने किया। देहाती संस्कृति को उजागर करनेवाले लोकनाट्य हो या समसामयिक संदर्भों को पेश करनेवाले मिथक नाटक हो, लाल अपने नाटकों के ज़रिये सामाजिक जाग्रति ही लक्षित करते थे।

'एक सत्य हरिश्चंद्र'डॉ लक्ष्मीनारायण लाल द्वारा रचित आधुनिक संवेदनाओं से युक्त नाटक है। सत्य हरिश्चंद्र की पौराणिक कथा को आधुनिक संदर्भ के अनुकूल नवीन व्याख्या देकर प्रस्तुत किया गया है। नाटक के भीतर मंचित होनेवाला एक और नाटक के रूप में हरिश्चंद्र की कथा का आयोजन हुआ है। शोषण के खिलाफ सामाजिक प्रतिरोध और क्रांति के स्वर को बुलंद किया गया है। नाटक की कथावस्तु दो समांतर रेखाओं में चलती है। एक तरफ लौका और देवधर के बीच शोषित-शोषक संघर्ष, दूसरी तरफ राजा हरिश्चंद्र की पौराणिक कथा द्वारा परम्परा से चले आ रहे शोषण का विरोध । नाटक को प्रस्तावना के साथ सात दृश्यों में विभाजित किया गया है। प्रस्तावना में नाटक की मुख्य बिन्दु के रूप में सवर्ण-शूद्र संघर्ष को प्रस्तुत किया गया है। सवर्णों के कुएँ की जगह सत्यनारायण की कथा का आयोजन होता है। सवर्णों का नेता, गाँव का पुराना ज़मींदार देवधर बाबू दलितों को अपना गुलाम बनाकर रखना चाहता है। शूद्रों का नेता लौका इस शोषण का विरोध करने केलिए गाँववालों को सचेत करता है। लौका उन्हें समझाता है कि धर्म और राजनीति द्वारा आज तक उनकी स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ है। ऐसे धर्म का तिरस्कार करना ही चाहिए। लौका घोषणा करता है कि अगले दिन वह सत्यनारायण की कथा सुनाएगा जो अपनी कथा होगी। विद्रोह को भड़कानेवाले लौका को देवधर अपने मार्ग से हटा देने केलिए षड्यंत्र रचता है। गाँव में सांप्रदायिकता की आग लगाकर उसमें लौका को फँसाने का प्रयास असफल हो जाता है। लौका गांधी मार्ग को अपनाकर सवर्ण-दलित संघर्ष को रोकता है। सत्यनारायन की कथा के रूप में 'सत्य हरिश्चंद्र' का नाटक खेलने का निश्चय किया जाता है,जिसमें देवधर, इंद्र की भूमिका अदा करता है। उसका सहयोगी जीतन विश्वामित्र की तथा उसकी सेक्रेटरी पद्मा शैव्या की भूमिका खेलता है। नाटक के अंत में सत्य की परीक्षा में विजयी होकर लौका का हरिश्चंद्र स्वर्ग चलने का निमंत्रण ठुकुरा देता है।वह खुले आम क्रांति का स्वर बुलंद करता है कि अब इन्द्र को अपनी परीक्षा देनी होगी, यह नहीं हो सकता कि हरिश्चंद्र हमेशा परीक्षा देते रहे और इन्द्र परीक्षा लेते रहे। यहीं पर लौका का स्वर सामाजिक क्रांति का संवाहक बन जाता है। इस प्रकार सवर्ण राजनीति के खिलाफ दलितों की क्रांति और विजय नाटक में चित्रित हुई है।

सामाजिक-राजनीतिक स्तर पर हो रहे शोषण के खिलाफ जनता को जाग्रत करना नाटककार का लक्ष्य रहा है। डॉ सुभाष भाटिया के शब्दों में "इस नाटक में लाल ने दबी हुई, कुचली हुई, प्रश्नहीन जनता के मुँह में न केवल ज़बान रख दी है, अपितु उसमें जागृति भी ला दी है। धर्म को जनता की शराब मानकर सत्ता का उपयोग करनेवालों का पर्दाफाश किया है।"[1]

समाज में शोषण की परंपरा को बनाए रखने केलिए यथास्थिति को बनाए रखने की ज़रूरत है। इसकेलिए जनता को शिक्षा से दूर रखकर और अंधविश्वास फैलाकर शोषक वर्ग अपना लक्ष्य साधते हैं। सत्ता के विरुद्ध बोलनेवालों को कुचल दिया जाता हैं। शोषण का अंत करने केलिए जनता को संगठित शक्ति बनकर विद्रोह करना होगा। लौका के नेतृत्व में एक सामूहिक जन चेतना का जागरण नाटक में देखा जा सकता हैं। नाटक की प्रस्तावना में ही क्रांति का स्वर गूँज उठता है। "अब जनता मालिक है, तो सुनो, अब जनता तुम्हें नहीं चाहती है।"[2] युगों से बेज़बान पड़ी जनता,राजा हरिश्चंद्र की तरह शोषण का शिकार बनी रही। लेकिन अब जनता अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो गयी है। सामाजिक क्रांति के आगे शोषक वर्ग की जड़ें हिल जाती हैं। उनका स्वर गूँज उठता है,"अब तुम नहीं चढ़े रह सकते पीठ पर हमारे, हम परिवर्तन लायेंगे"[3] लौका देवधर से उसके सत्य की परीक्षा माँगता है। जनता की यह घोषणा क्रांति की चरम बिन्दु है-"अब कोई नहीं होगा इन्द्र, कोई नहीं होगा विश्वामित्र,सब होंगे हरिश्चंद्र।"[4] सभी बंधनों को तोड़ने का, क्रांति करने का आह्वान ही नाटक में मुखर उठता है।

सत्य की परीक्षा में सफल होकर हरिश्चंद्र अपनी पृथ्वी पर ही रहना चाहता है। स्वर्ग जाना जीवन

की यथार्थता से पलायन करना है। लौका हरिश्चंद्र की भूमिका में कहता है "नहीं चाहिए मुझे झूठा स्वर्ग।"[5] वह इन्द्र को खुले आम चुनौती देता है "अब तुम्हें देनी होगी परीक्षा अपने सत्य की"[6]। हरिश्चंद्र शोषित वर्ग का प्रतिनिधि है, जो क्रान्ति का ऐलान करता है। वह आधुनिक युग का नया हरिश्चंद्र है। आज की राजनीति सत्य के आधार पर नहीं, झूठ के आधार पर खड़ी है। सत्ता के संरक्षण के लिए नेता षड्यन्त्र करता है, सांप्रदायिकता को बढ़ावा देता है। यह नाटक वर्तमान राजनीतिक यथार्थ को प्रस्तुत करता है जहाँ करनी और कथनी में बड़ा अंतर रहता है। एक इन्द्र की जगह अब असंख्य इन्द्र हैं, जो गरीबों को लूटने में मिले हुए है। धार्मिक अंधविश्वास में जनता को जकड़े रखने की कोशिश उनकी शोषण-नीति है। देवधर के अनुसार शूद्र लौका को सत्यनारायण की कथा कहने का अधिकार नहीं। इस प्रकार का दक़ियानूसी विश्वास अब जन विद्रोह के आगे टिकेगा नहीं।

सत् युग का हरिश्चंद्र हर तरह के शोषण का शिकार होकर जीने केलिए विवश था। इंद्र और विश्वामित्र जैसे शोषक हर युग में मौजूद हैं। लेकिन वर्तमान युग का हरिश्चंद्र अपने अधिकारों के प्रति सजग हो गया है। अन्यायों को चुपचाप सहते जाना एक प्रकार से अन्याय का प्रोत्साहन करना होता है। इस नये हरिश्चंद्र को प्रस्तुत करके नाटककार ने अन्याय के खिलाफ प्रतिरोध और संघर्ष का रास्ता प्रशस्त किया है।

संदर्भ :

1.लक्ष्मीनारायण लाल की नाट्य साधना—डॉ सुभाष भाटिया, शांति प्रकाशन, हरियाणा, 1990, पृ. 56

2.एक सत्य हरिश्चंद्र-डॉ लक्ष्मीनारायण लाल, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1981, पृ. 17

3. वही, पृ. 64 4. वही, पृ. 78

5. वही, पृ. 76 6. वही, पृ. 77

◆असिस्टेंट प्रोफसर

सरकारी वनिता कॉलेज, तिरुवनंतपुरम

केरल।

देव-त्रय की देन

◆ डॉ.सुमा आई

केरल के तीन हिन्दी साहित्यकारों, जिनके नाम के साथ 'देव' शब्द जुड़ा है, (देवत्रय - नारायण देव, अभयदेव, और पी.जी. वासुदेव) का योगदान महत्वपूर्ण रहा है।

पं नारायण देव

एक सफ़ल अध्यापक, भावुक कवि और गंभीर लेखक तथा कुशल वक्ता थे नारायण देव। सन् 1910 में कोट्टयम जिले में इनका जन्म हुआ। आर्य समाज से प्रभावित होने के पश्चात् उन्होंने अपने असली नाम 'नारायणन नायर' को 'नारायण देव' बना दिया था। 'देव केरलीय' नाम से वे लिखते थे।

नारायण देव जी ऐसे एक साहित्यिक साधक थे जिन्होंने अपने जीवन की विकट परिस्थितियों में अपनी कलम छोड़ी नहीं। सूक्ष्म निरीक्षण एवं तदनुकूल अभिव्यक्ति आपकी सर्जना की विशेषता है। नारायण जी के बारे में हिन्दी के प्रसिद्ध कवि हरिवंशराय बच्चन ने कहा था - "हिन्दी को अपने भाव की, हृदय की भाषा बनाकर उसके प्रति जो आत्मीयता उन्होंने दिखाई है उसके लिए हर हिन्दी भाषी को उनके प्रति कृतज्ञ होना चाहिए।"

देवजी की कविताओं के चार संग्रह हैं- 'आरती', 'गाँधी सप्तक', 'तरंगिणी' और 'पाथेय'। 'आरती' माँ भारती के मंगलाचरण में आरती के रूप में समर्पित किया गया है। इस संकलन की कुछ कविताएँ हिन्दी का पक्ष समर्थन करती हैं, कुछ कविताएँ दार्शनिक हैं और कुछ प्रेम संबंधी हैं। बहुत सी कविताएँ प्रकृति की

मनोहरता को अभिव्यक्त करनेवाली हैं। मलयालम के महाकवि उल्लूर एस.परमेश्वर अय्यर की 'उमाकेरलम', कुमारन आशान की 'वीणपूव' और 'चिन्ता विष्टवाय सीता' जैसी काव्य-कृतियों का पद्यानुवाद उन्होंने हिन्दी में प्रस्तुत किया था। देवजी कुशल संपादक भी रहे हैं। उन्होंने 'विश्वभारती' पत्रिका का संपादन कार्य अभयदेव के साथ मिलकर किया था। उन्होंने 'केरल भारती' पत्रिका का भी कुशल संपादन किया।

'देव केरलीय' गाँधी जी के अनन्य उपासक रहे हैं। गाँधीजी की जन्मशताब्दी में उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए 'गाँधी सप्तक' नामक लघुकृति प्रस्तुत की। सन् 1970 में केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय की ओर से 'गाँधी सप्तक' पुरस्कृत हुआ। यह मलयालम भाषी हिन्दी कवि को केन्द्र सरकार की तरफ़ से मिलनेवाला प्रथम पुरस्कार था। सन् 1977 में 'भारतीय कला साहित्य संस्कृति परिषद्, मथुरा' ने हिन्दी सेवा के आधार पर उन्हें 'साहित्य मार्तण्ड' की मानद उपाधि दी। सन् 1983 में 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग' ने उन्हें प्रशस्ति पत्र देकर सम्मानित किया। 'केरल हिन्दी साहित्य अकादमी, तिरुवनन्तपुरम' का प्रथम पुरस्कार देवजी को दिया गया।

अपनी मृत्यु तक सक्रिय रहे देवजी का 12 दिसंबर 1998 को, नब्बे वर्ष की आयु में निधन हो गया।

अभयदेव

अभयदेव जी मलयालम के लोकप्रिय फिल्म गीतकार तथा हिन्दी मलयालम अनुवादक के रूप में विख्यात हैं। कोट्टयम जिले के पल्लम गाँव में सन् 1914 को उनका जन्म हुआ। उनका असली नाम के. के. अय्यप्पन पिल्लै था । कोट्टयम के ही निवासी और हिन्दी कवि श्री. नारायण ने जब अपना नाम 'नारायण देव' बना दिया तो उनसे प्रभावित होकर श्री. अय्यप्पन पिल्लै ने अभयदेव नाम स्वीकार किया। नारायणदेव के 'श्रद्धानन्द हिन्दी कॉलेज' में उनके सहायक थे अभयदेव। सन् 1950 को अभयदेव जी ने 'विश्व भारती' पत्रिका का संपादन एवं प्रकाशन शुरू किया। उन्होंने कोट्टयम में 'अखिल केरल सहकारी संघ' की स्थापना की और संघ के स्थापक मंत्री बने। इस संघ की ओर से कुछ प्रतिनिधि मलयालम ग्रंथों के हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किये गये । श्री अभयदेव जी ने वेट्टूर रामन नायर के उपन्यास 'जीविक्कान मरन्नुपोय स्त्री' को 'जो जीना भूल गयी' नाम से अनूदित किया। 'मिट्टी और नारी' तथा 'केरल सिंहम' आदि उनकी अन्य अनूदित रचनाएँ है। उन्होंने कुमारन आशान के नलिनी खण्डकाव्य का छंदोबद्ध अनुवाद भी किया। इस अनुवाद में मूल के प्रबल प्रवाह और ओज के साथ ही साथ छंद और प्रतीक भी सफलतापूर्वक लक्ष्य भाषा में स्थान पा सके हैं। अभयदेवजी ने 'साहित्य प्रवर्तक सहकारी संघ' के अनुरोध पर पाँच सालों के परिश्रम से 'हिन्दी मलयालम कोश ' का संपादन किया। फादर कामिल बुलके का शोध ग्रंथ 'रामकथा' का मलयालम में अनुवाद किया। अभवदेव जी कवि होने के साथ-साथ संगीत पर भी रुचि रखनेवाले थे। वे मलयालम के पेशेवर नाटक दलों के लिए मलयालम में गीत लिखते थे और फिल्मी दुनिया में भी अच्छे गीतकार के रूप में विख्यात हुए।

हृदयस्पर्शी भाव तथा सरल-सुमधुर भाषा में लिखने की कला में वे प्रवीण थे। डब्बिंग में भी वे कुशलता रखते थे। वे तेलुंगु तथा तमिल फिल्मों का पूरा स्क्रिप्ट मलयालम में अनुवाद करते थे। फिल्म जगत् को दिये गए योगदानों के लिए उन्हें 'डानियल पुरस्कार' (1995) प्रदान किया गया। भारतीय फिल्मों के स्वर्ण जयन्ती समारोह (1981) में केरल फिल्म चेम्बर ऑफ कोमेर्स ने उनका सम्मान किया । हिन्दी विद्यापीठ के 'पी. जी. वासुदेव पुरस्कार' से भी वे सम्मानित हुए। 26 जुलाई 2000 को अभयदेव जी

का निधन हुआ। केरल के हिन्दी भाषा और साहित्य के इतिहास में वे सदा अमर रहेंगे।

पी.जी.वासुदेव

स्वतंत्रता सेनानी, समर्पित हिन्दी प्रचारक, सफल अध्यापक, हिन्दी तथा मलयालम के स्तरीय रचनाकार, अनुभवी अनुवादक एवं आदर्श पत्रकार के रूप में वासुदेव जी का स्मरण किया जाता है।

श्री. पी. जी वासुदेव का जन्म कोट्टयम जिले में तृक्कोटित्तानम गाँव में सन् 1913 को हुआ था। उनका पूरा नाम पी. जी. वासुदेवन नायर है। विद्यार्थी जीवन में ही महात्मागांधी के आह्वानों का असर उनपर पड़ा था। केरल के सर्वप्रथम हिन्दी प्रचारक श्री. एम.के.दामोदरन उण्णि के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर वासुदेव जी ने हिन्दी का अध्ययन शुरू किया था । सन् 1929 के आसपास वे मद्रास चले गए और वहाँ 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' की परीक्षाएँ पास कीं। मद्रास हिन्दी विद्यालय में पढ़ते समय उन्होंने स्वतंत्रता- संग्राम में भी भाग लिया। सन् 1933 में वे उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए इलाहाबाद गए और सन् 1934 में काशी से 'शास्त्री' परीक्षा पास की। सन् 1932 को पं.देवदूत विद्यार्थी ने उन्हें 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, तिरुवनन्तपुरम समिति' के प्रचारक के रूप में नियुक्त किया।

सन् 1936 से 1958 तक प्राक्कुलम एन.एस.एस हाईस्कूल, चेङन्नूर हिन्दी कॉलेज, एन.एस.एस. कॉलेज (पन्तलम) आदि कई संस्थाओं में वासुदेव जी हिन्दी के अध्यापन कार्य में लगे रहे। चंगनाशेरी में नौकरी करते वक्त इस्तीफा देकर 'केरल हिन्दी प्रचार सभा' के संगठनकर्ता का पद स्वीकार कर केरल के अनेक स्थानों पर हिन्दी विद्यालय खोले।

'केरल पत्रिका', 'भाव और रूप' जैसी पत्रिकाओं का संपादन भी उन्होंने किया। सन् 1972 में उन्होंने 'हिन्दी विद्यापीठ' की स्थापना की तथा 'हिन्दी विद्यापीठ' के मुखपत्र के रूप में 'संग्रथन' पत्रिका का प्रकाशन भी शुरू किया। उनके बाद हिन्दी प्रचार-प्रसार का कार्य उनके सुपुत्र डॉ. वी. वी. विश्वम ने संभाला। अब डॉ.वी.वी.विश्वमजी हिन्दी सेवा-क्षेत्र में सक्रिय हैं।

वासुदेव जी मलयालम तथा हिन्दी दोनों भाषाओं में समान अधिकार रखते थे। वासुदेव जी की मौलिक रचनाएँ हैं- ब्रह्मचर्यम्, अशोकनेन्न महान, कप्पल कोल्लक्कारन, चीन कोल्लक्कारन, वाइट हाउस आदि। उन्होंने हिन्दी में अनेक बालसाहित्य कृतियाँ भी लिखी हैं। वासुदेव जी की हिन्दी से अनूदित मलयालम रचनाएँ हैं- स्वप्नमयी, कुरुक्कुकल (फंदा), कैच्चङङला (हथकड़ी) आदि । मलयालम से हिन्दी में अनूदित रचनाएँ हैं- वह फिर आ रहा है, गीतानन्द, अग्निवलय आदि।

प्रेमचन्द की 'जागरण' पत्रिका में वे 'श्रीकृष्ण' नाम से लिखा करते थे। पत्रिका की 'जीवन झाँकियाँ' नामक भूमिका में श्रीमती महादेवी वर्मा ने यों लिखा है- "वासुदेव जी अखण्ड सांस्कृतिक चेतना के प्रति आस्थावान थे। ऐसे क्योंकि आज के विघटनशील युग में भारत का वर्चस्व तथा उसकी अस्मिता इन्हीं के द्वारा व्यक्त हो सकती है।"

पी.जी वासुदेव जी को कई पुरस्कार प्राप्त हैं- सन् 1991 में प्राप्त उत्तर प्रदेश सरकार का सौहार्द सम्मान, सन् 1992 में प्राप्त गणेशशंकर विद्यार्थी पुरस्कार आदि उनमें प्रमुख हैं। जीवन के अंतिम चरणों में भी कर्मनिरत रहनेवाले वासुदेव जी का निधन 19 नवम्बर 1998 को हुआ।

केरल के हिन्दी साहित्य के इतिहास में देवत्रयों का योगदान हमेशा चिरस्थाई रहेगा।

◆ असिस्टेंट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, यूनिवर्सिटी कॉलज,
तिरुवनंतपुरम, केरल
मो. नं. - 9400070400

नारी की अस्मिताः समकालीन उपन्यास में

◆ डॉ. सिन्धु जी. नायर

दुनिया के निर्माण के पश्चात् ईश्वर ने विचार किया होगा कि इस दुनिया को और अधिक सुन्दर बनाना होगा । इसको मद्यनज़र रखते हुए ईश्वर ने मानव की रचना की। मानव को दो रूप दिये- एक पुरुष और दूसरा नारी। नारी शब्द स्वतः सम्पूर्ण व निरपेक्ष सत्ता का बोध करता है जिसमें शक्ति, सौन्दर्य, शील, त्याग, कर्तव्य, उत्सर्ग, परायणत आदि सभी तत्व समाहित होते हैं। ये दोनों ही एक दूसरे के पूरक हैं, किन्तु नारी के बिना दुनिया का कोई अस्तित्व ही नहीं है। ईशर ने नारी का शारीरिक गठन इस प्रकार किया है कि वह स्वयं निर्माता हो गयी। ऋग्वैदिक काल में नारियों की सामाजिक दशा में हम पाते हैं कि उन्हें पर्याप्त स्वतन्त्रता थी । वह यज्ञ में तथा सभा समितियों की कार्यवाही में भाग लेती थी । यह माना गया - यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता[1]। नारी विधाता की सर्वोत्तम और नायाब सृष्टि है । यह तो एक विराट स्वरूप है, जिसके आगे स्वयं विधाता भी नतमस्तक होता है । नारी को समाज ने पुरुष का आधा हिस्सा माना है और अर्दधनारीश्वर के रूप में माना है । आदिकाल के उन सामाजिक दायित्वों को अपने कन्धों पर उठाए दिखती है । पुरातन कालीन भारत में भी नारी को उच्च स्थान प्राप्त था । पुरुष के समान ही उन्हें सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक कृत्यों में भाग लेने का अधिकार प्राप्त था । भारतीय जन-जीवन की मूल धुरी नारी है । समाज का निर्माण स्त्री-पुरुष के योग से ही होता है, जो समाज को सुचारु रुप से चलाने के लिए अत्यंत आवश्यक है । समाज के दोनों पहिए स्त्री और पुरुष जब मिलकर कार्य करते हैं तभी समाज की गाड़ी चलती है । इन दोनों के सहयोग को लिए ही परिवार और दाम्पत्य बनाये गये है । लेकिन समय के साथ-साथ नारी की सामाजिक दशा में गिरावट आरम्भ हो गया । मैथिलीशरण गुप्त जी ने भी कहा है कि "अबला जीवन हाय, तुम्हारी यही कहानी, आँचल में है दूध और आँखों में पानी "।

सन् 1960 के बाद उपन्यासों में समाज सुधारकों एवं साहित्यकारों ने नारी के युगों से चलते आ रहे पारिवारिक शोषण, अन्याय, अत्याचार एवं बंधनों से उसे मुक्ति दिलाने हेतु आवाज़ उठायी। परंपरागत रुढ़ियाँ,मान्याताएँ, धार्मिक बन्धन आदि के कारण जो नारी शोषण ज़ारी रहा है, उसके खिलाफ आवाज़ उठाई। फलस्वरुप नारी अपनी अस्मिता के प्रति अधिक सचेत और सतर्क हो रही है। उस संदर्भ में लिखनेवाले उपन्यासकारों में उषा प्रियंवदा , मेहरुन्निसा परवेज़, नासिरा शर्मा, चित्रा मुद्गल, प्रभा खेतान, शुभा वर्मा, चंद्रकांता और मृदुला गर्ग आदि प्रमुख हैं ।

उषा प्रियंवदा जी कृत 'शेष यात्रा' को नारी जीवन की त्रासद स्थितियों का सबल दस्तावेज़ कहा जा सकता है । इस उपन्यास में अनु के जीवन के उतार-चढ़ाव दर्शाये गये हैं । अनु के विवाह से पूर्व के जीवन और तलाक से पूर्व के जीवन चित्रित हैं । विवाह पूर्व अनु एक साधारण सहज लड़की थी जिसको प्रवासी प्रणव कुमार द्वारा पसंद कर लिया जाता है । नारी की नियति यही है कि वह किसी के द्वारा पसंद की जाए और खूँटे में बँधी जाती है ।पुरुष सदैव से ही अपनी कामना की पूर्ति करनेवाली निष्किय वस्तु चाहता है । प्रणव कहता है कि "मुझे एक बेवकूफ लड़की जो चाहिए थी । तुम्हें देखकर ही जान गया था कि तुम काफी मूर्ख हो ।"[2] पुरुष सदेव एक खूबसूरत गुड़िया चाहता है जो हर निर्णय में उस पर निर्भर करे और बागडोर उसी के हाथ में रहे । प्रारंभ से ही नारी का जीवन पूर्व निर्धारित होता है कि नारी बचपन में पिता के संरक्षण में रहती है , विवाह के उपरांत पति के संरक्षण में और बाद में पुत्र के संरक्षण में रहती है । नारी की भूमिका , उसका अस्तित्व पुरुष प्रधान समाज द्वारा परिभाषित किये जाते हैं । उसके अस्तित्व केवल पत्नीत्व एवं मातृत्व में ही हैं । लेकिन शादी के चार-पाँच साल बाद ही ये खुशियाँ खत्म हो जाती हैं ,कारण यह था कि अनु का पति प्रणव पत्नी के साथ रहकर नीरजा, विभा, चंद्रिका आदि स्त्रियों से शरीरिक संबंध रखता है । अंत में वह चंद्रिका के खातिर अनु को ज़बरन तलाक देता है। तलाक की स्थिति आने

पर 'उपयोग करो फेंक दो' के द्वारा नारी की वेदना का खुलासा किया गया है। भारतीय संस्कार जहाँ नारी को पति के सर्वस्व होने की बात बताता है वहीं प्रणव द्वारा विदेश में अनु को निराश्रित कर देना मर्मांतक पीड़ा का कारण बनता है। प्रणव से परित्यक्ता बनने के बाद दिव्या से प्रेरणा पाकर अनु डॉक्टर बनती है और अनु दिव्या के भाई दीपांकर से पुनर्विवाह करती है।

चित्रा मुद्गल कृत उपन्यास 'एक जमीन अपनी' की अंकिता सुधांशु के साथ अंतरजातीय विवाह करती है। कोर्ट में विवाह करती है। लेकिन समय के साथ सब कुछ बदल जाता है। अंकिता अपने पति के दोस्तों के साथ मिलकर शराब पीना, ताश खेलना और गंदे- गंदे मज़ाक करना आदि सह नहीं पाती। इस वज़ह से पति-पत्नी के बीच तनाव और कलह उत्पन्न होना प्रारंभ होता है। सुधांशु अंकिता को मारता पीटता है और वह दीवार से टकराती है। इन सब की वज़ह से उसका बच्चा पेट में ही मर जाता है। अंकिता सुधांशु के शोक न प्रकट करने पर विद्रोह भरे स्वर में कहती है - " मेरे लिए भी उसका मरना मेरी ज़िंदगी से तुम्हारा निष्कासन है .....वरना उसकी शक्ल में ज़िंदगी भर मुझे तुमने ढोना पढ़ता.....क्योंकि वह हमारा बच्चा नहीं था..... तुम्हारी कामुकता का परिणाम था..... मुझे तुमसे घृणा है घृणा....."[3] अपने दुराचारी पति की ऐयाशियों तथा ज़्यादतियों से तंग आकर उसका त्याग कर देती है। वह सुधांशु को छोड़कर अपने मायके लौटती है तो उसे लोगों की छींटाकशी सुननी पड़ती है। परित्यक्ता नारी को हर पग अपमानित होना पड़ता है। वह नौकरी करके आत्मनिर्भर बनकर सम्मान के साथ जीवन-यापन करना चाहती है। परन्तु नौकरी में स्थिरता प्राप्त नहीं हो पाती। परित्यक्ता नारी होने से सभी उसकी ओर यौन-लालसा तथा संदेह की दृष्टि से देखते हैं। वह स्वाभिमानी एवं चरित्रवान नारी है। इसलिए वह नौकरी भी पूरे सम्मान के साथ करना चाहती है। वह जिस एजेंसी में काम करती है वहाँ मि. सक्सेना अंकिता से बदतमीज़ी करता है तो अंकिता उसका मुँह-तोड़ जवाब देती है। परिणामस्वरुप उसे एजेंसी से निकाल दिया जाता है। अंकिता अपनी सहेली नीता से कहती है -"वह सूअर का बच्चा सक्सेना .....आठ पैग्स उसके गले उतर चुके थे और उसके हाथ-पाँव अपने वश में नहीं थे। उसके कंधे पर हाथ नहीं रखा था.....पार्टी की बात थी.....वरना वहीं चप्रल उतार लेती....वह भी सीख जाता कि पार्टियों में लड़कियाँ बिकने नहीं आतीं, आती हैं तो उनके साथ कैसा सुलूक करना चाहिए....।"[4] इस उपन्यास में एक और पात्र का उल्लेख मिलता है नीता। अविवाहित नीता पर-पुरुष संबंध रखने को गलत नहीं समझती। वह विवाहित सुधीर से यौन संबंध रखती है। वह गर्भवती होती है। वह मातृत्व के लिए अवैध संबंध को गलत नहीं मानती और आजीवन अविवाहित रहकर अपनी बेटी को पालती है। चित्रा मुद्गल कृत एक और उपन्यास 'आवाँ' में लेखिका ने नारी जीवन के प्रत्येक पहलू को उभारा है। इस उपन्यास में नमिता पाण्डे को अपने पिता मज़दूर नेता देवीशंकर पाण्डे के असमर्थ होने पर अपनी पढ़ाई छोड़कर कामकाज को अपनाना पड़ता है। नमिता को उसी कामगार आघाड़ी में काम मिलता है जहाँ उसके पिता कार्यरत थे। लेकिन कुछ समय पश्चात ही नमिता अन्ना साहब द्वारा किये गये दुर्व्यवहार के कारण नौकरी से इस्तीफा दे देती है। धन के अभाव में परिवार के जीवन-यापन का प्रश्न और भी जटिल रुप में सामने आ खड़ा होता है। ऐसे में एक दिन उसकी मुलाकात लोकल ट्रेन में अंजना वासवानी से होती है जो उसे नौकरी देने का वायदे के साथ विदा लेती है। नौकरी करना नमिता की आवश्यकता ही नहीं विवशता भी है और उसकी यही विवशता उसे अंजना वासवानी के घर यानी अपनी बर्बादी की राह पर खींच ले जाती है। अंजना एक दलाल है जिसका कार्य नमिता को संजय कनोई से मिलवाना है ताकि वह संजय कनोई का वंशबल बढ़ाने हेतु उन्हें एक संतान दे। जब अनायास हुए गर्भपात के कारण उसका सामना सत्य से होता है तो उसके पाँव तले की ज़मीन निकल गई - "जानती हो बाप बनने के लिए मैंने तुम्हारे पर कितना खर्च है कि तुम्हारे ऊपर पैसा पानी की तरह बहा सके। उसका जिम्मा सिर्फ इतना भर था कि वह मेरे पिता बनने में मेरी मदद करे और सौदे के मुताबिक अपना कमिशन खाये।"[5]

प्रभा खेतान द्वारा लिखित उपन्यास 'छिन्नमस्ता' में नारी जीवन के उन दर्दनाक पक्षों को परत-दर-परत खोला है। इसमें उपन्यासकार ने प्रिया नामक पात्रा का चित्रण किया है जिसे बचपन से दबाया कुचला गया है। पितृगृह और पतिगृह दोनों ही परिवारों में प्रिया को अवहेलना और उपेक्षा ही मिली

थीं । नरेंद्र को प्रिया का काम करना पसन्द नहीं और वह उसके काम को बंद करवाने तथा घर से निकालने को आये दिन धमकियाँ देता रहता है । इस उपन्यास की नायिका प्रिया संयुक्त परिवार के रोज़ की समस्याओं से दुखी है – "क्या सारी जिन्दगी मैं बस टेबिल सजाती रहूँगी.. बर्तनों को सम्हालती रहूँगी....एक ही अनुभव का बार-बार घटना ,.....घटते चले जाना, सब कुछ कितना नीरस लगने लगता है । गृहस्थी के झमेले कभी शांत न होनेवाली लहरें.....क्या इसी को संसार सागर कहा गया है ।"[6] प्रिया अपने व्यवसाय के कारण ही खोया आत्मविश्वास पुनःअर्जित करती है । प्रिया को भी अपनी आर्थिक निर्भरता का मूल्य अपने परिवार तथा रिश्तों की बलि देकर चुकाना पड़ता है, क्योंकि पुरुष अपने सामने स्त्री के बढ़ते सामाजिक कदम को स्वीकार नहीं कर पाता । नरेन्द्र भी प्रिया से यह कहकर घर के दरवाज़ा बंद कर लेता है कि " फिर लौटकर यहाँ मत आना । आओगी तो मैं धक्के देकर बाहर निकालवा दूँगा"।[7] भारतीय समाज स्त्री की स्वतंत्रता का पक्षधर नहीं है। साथ ही महत्वाकांक्षी स्त्री को अचरित्रहीन बनाकर पेश करती है । सदियों से अधीनस्थ की ज़िंदगी जीती आई स्त्री ने जब भी लीक तोड़ने का प्रयास किया है वह अकेली रह गई है । काली होने की वजह से माँ को उसके विवाह की राह भी आसान नज़र नहीं आती । पति के रूप में प्रिया को नरेन्द्र का साथ मिलकर भी नहीं मिल पाया है । नरेन्द्र को प्रिया का व्यवसाय से जुड़ना पसंद नहीं और इसे वह अपनी ही गलती मानता है । "दरअसल तुम्हें इतनी खुली छूट देने की गलती मेरी ही थी । मुझे पहले ही चिड़िया के पंख काट डालने चाहिए थे।"[8] नरेन्द्र के माध्यम से लेखिका ने भारतीय पति की पारंपरिक दूषित प्रवृति का प्रतिनिधित्व करते सोच को उजागर किया है कि पत्नी तो मुफ्त सेविका है, जो उसके इशारों पर नाचती है ।

सुरेन्द्र वर्मा कृत उपन्यास 'मुझे चाँद चाहिए' में नारी के न केवल बाह्य संघर्षों को, अपितु उसके अंतर्द्वन्द्व को भी अपने में समेटा हुआ है । वर्षों तक उन वर्जनाओं के कारागृह में कैद होकर नारी रुढ़िवादिता के कारण पुरुषों से पिछड़ गयी किंतु आज नारी पूरी तरह से स्वतंत्र है और स्वयं को आत्मनिर्भर बनाना चाहती है । वर्षा भी चाहती है कि वह आत्मनिर्भर बने । वह जानती है कि उसके परिवार की हालत अच्छी नहीं हैं इसीलिए अपना फीस भरने के लिए वह स्वयं ट्यूशन पढ़ाना स्वीकार करती है । वह अपने पिता के विरुद्ध होकर ट्यूशन पढ़ाने लगती है और अपने वंश की सात पीढ़ियों में काम करनेवाली पहली कन्या बन जाती है । यदि एक लड़की आगे पढ़ना भी चाहती है तो उसकी रुढिग्रस्त माँ इसमें सबसे बड़ी बाधा बनती है । 'मुझे चाँद चाहिए' की नायिका वर्षा वशिष्ठ भी अपने पिता द्वारा बनायी गयी सब परंपराओं व मर्यादाओं का उल्लंघन करती है और उनका डटकर सामना करती है । वर्षा अपने परिवारवालों का भरपूर विरोध करती है और अपनी पहचान बनाने में अंत में सफल होती है । अब वह स्वतन्त्र है और वह अपना निर्णय स्वयं लेती है । डॉ.गोपाल राय के अनुसार " उस कथा संसार में कलाकार के संघर्ष के साथ- साथ स्त्री-विमर्श की कथा भी गहरे पीड़ा बोध, संजीदगी और कलात्मक संयम के साथ की उपेक्षणीय नहीं है । वर्षा का कला-संघर्ष " खुल जा सिमसिम " की तरह एक के बाद एक उपलब्धियों से जुड़ते रहने के कारण कोई तनाव पैदा नहीं करता, फिर भी वह सपाट नहीं है । उसका चरित्र एक मध्यवर्गीय रुढिवादी ब्राह्मण परिवार की लड़की के यशोदा पांडेय सोसिने-तारिका वर्षा वशिष्ठ की यात्रा तथा स्त्री के संघर्ष और विद्रोह का असाधारण उदाहरण है "।[9]

शुभा वर्मा की 'फ्री लांसर' में पुरुष निरपेक्ष एवं एकाकी जीवन यापन करनेवाली एक साहसी नारी की कथा प्रस्तुत की गयी है । शहाना अपनी मौसी की मृत्यु के पश्चात् एकाकी जीवन व्यतीत करती है और अपनी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ बनाने के लिए और स्वतंत्र जीवन जीने के लिए फ्री लांसर बनती है । नायिका शहाना विवाह बंधन को स्वीकार करना नहीं चाहती । वह अपनी पत्रकारिता के प्रति समर्पित है । वह मानती है कि-"समर्पित रहकर जीवन बिता देना स्त्री की विवशता की शर्त रही हो कभी, आज हालात बदल गयी हैं, जिसे प्यार किया जाए उसके प्रति समर्पित हुआ जाए उसके गुण-अवगुण उसकी क्षमता अपने से कुछ तो ज़्यादा है । बराबर या अपने से कम के साथ समझौता हो सकता है, समर्पण का सौदा नहीं ।"[10] भारतीय समाज में अविवाहित नारी के लिए मुक्त पत्रकरिता का कार्य उसके सामने अनेक समस्याओं को उत्पन्न करता हैं । उसे सैम जैसे पुरुषों की कामुक दृष्टि का सामना करना पड़ता है ।

"स्त्री को उसके सही परिप्रेक्ष्य में देखकर स्त्री पर विजय पाने का एक ही रास्ता उसे सूझ रहा है और वह अंधाधुंध उस पर गिरता पड़ता आगे बढ़ रहा है "[11] इसी उपन्यास में रोज़ी, जो कि एक विधवा है जीवन यापन के लिए सैम के दफ्तर में नौकरी करती है । सैम उसका बॉस है । सैम रोज़ी को अपनी वासना का शिकार बनाता है । असहाय रोज़ी की देह से वह जब चाहे खेलता है । विवशतावश वह अपने जीवन के अभावों को दूर करने के लिए सैम की हवस का शिकार बन जाती है। रोज़ी के काम पर हाज़िर होते ही सैम उसे अपनी केबिन में बुलाकर बाहों में भर लेता है, और कहता है- " जानेमन, खत्म कर दो मन की उदासी । भूल जाओ उसको जो अब कभी नहीं आ सकता। यही तुम्हारा काम है यहाँ।"[12] यहाँ, रोज़ी को एक बेजान गुडिया के समान दिखाया गया है, जिसे जहाँ कहीं भी रख दिया जाय, वह चुपचाप पड़ी रहेगी। 'आफ्तरनून´ समाचार पत्र का संपादक सैम लड़कियों को नौकरी दिलाने का लालच देकर अपनी यौन-तुष्टि करता है । वह एक साथ दो-दो लड़कियों से लीलाएँ करता है -" रोज़ी के ओठों पर देर तक विश्राम पाने के बाद सैम साहब अपनी बाहों में उसे मालती के पास तक ले आए । दाहिनी और रोज़ी को लपेटे हुए उन्होंने बायीं ओर से मालती को भी समेट लिया।.....उत्तेजना से सैम साहब का चेहरा लाल हो गया था । मालती के चेहरे पर उन्होंने चुंबनों की बौछार कर दी ।"[13]

हरिमोहन कृत उपन्यास 'अकेले-अकेले' साथ में नारी मुक्ति और उसके अस्तित्व की तलाश की कथा है । इस उपन्यास में ऐसी स्त्रियाँ हैं जो अपना सर्वस्व देकर संबंधों के निर्वाह में आस्था रखती है । किन्तु समाज नारी की पीड़ा को समाज दोयम दर्जे की वेदना मानता है । अमृता के अंदर एक द्वंद्व निरंतर चलता रहा । उसकी छटपटाहट में अपनी गृहस्थी को न बचा पाने की पीड़ा और जीवन में अपने अस्तित्व को पहचानने की छटपटाहट निरंतर दिखायी देती है । अमृता ने हर भरसक प्रयास किया कि वह परिवार को बचा सके । वह कहती है कि - "मैं समझाती वह समझता ही नहीं था । मैं हर रात उसका प्यार समेटना चाहती, लेकिन सुबह होते-होते सब कुछ बिखर जाता – जब उधार माँगनेवालों के फोन आते, तो मुझे ही आगे कर दिया जाता । मैं झूठ बोलती, घर पर नहीं हैं । बाहर गये हैं । वह सब करने-कहने के लिए मैं थी । पत्नी पति की कमज़ोरियों को छिपाने के लिए ही इस्तेमाल की जाती है ।"[14] अमृता की पीड़ा अपराध के निर्वासन झेल रही नारी की व्यथा है । अमृता तलाक के निर्णय से आश्वस्त है, पर साथ ही प्रश्न करती है कि -" कोई मुझे घर की परिभाषा तो बताओ । क्या होता है घर। इकट्ठे सोना, एक ही छत के नीचे रहना , अजबनियों की तरह । खैर मुझे क्या करना है । मेरा फैसला मेरा अपना है । उसे कोई बदल नहीं सकता-आँखें किसी संकल्प में चमक रही थीं "।[15]

मेहरुन्निसा परवेज़ कृत उपन्यास 'अकेला पलाश' में सामाजिक समस्या से लेकर नारी समस्याओं का स्वर सामने आता है । लेखिका ने स्पष्ट किया है कि नारी का प्रयोग वस्तु की तरह प्रत्येक मनुष्य करता है चाहे वह स्वयं के माता-पिता ही क्यों न हों, वे लोग भी अपने स्वार्थ में आकर बेटी का निःसंकोच प्रयोग कर लेते हैं । इस उपन्यास में स्वार्थी माँ अपने पति को एयाशी में घुमता देखकर उसे वापस लाने तथा बदला लेने के लिए अपनी बेटी तहमीना की जिंदगी तथा उसके सपनों की आहुति दे देता है । उसकी माँ उसका विवाह अपने पति के मित्र से कराना चाहती है । तहमीना को आश्चर्य होता है और एक दिन वही आदमी माँ की मौजूदगी में उसके घर में कर उसके साथ अशिष्ट व्यवहार करता है । प्रत्येक क्षेत्र में नारी का शोषण होता है । पुरुष के लिए समाज क्षमायुक्त रहता है । तहमीना का पति जमशेद , अपनी पत्नी तहमीना और उसके भाई विपुल के साथ हँसते-बोलते देख शक करने लगता है । तहमीना चेयरमेन के पद पर है इसके उपरान्त भी पति के सामने वह सिर्फ एक नारी है । दफ्तर से आकर नारी को परिवार के सारे कामकाज करने पड़ते हैं। परन्तु परिवार के सदस्यों की इस मानसिकता में कोई बदलाव नहीं आया कि वे घरेलू कामों में मदद करे । पुरुष तो ऑफिस से आने के बाद आराम करने के लिए घर पहुँचता हैं, परन्तु नारी सिर्फ कर्तव्यपरायण ही बनी रहती है । पुरुष यही चाहता है कि वह उसकी दासी बनी रहे । उसके स्वास्थ्य तक की परवाह किए बिना कहता है – "मैं कुछ नहीं जानता, मुझे खाना है और अच्छा खाना खाना है , इतनी रात हो गयी है और खाने का पता नहीं , चाय तक नहीं पी ।"[16] इस उपन्यास में

लेखिका ने नारी को अपनी पहचान दिलाने का प्रभावी प्रयत्न किया है । शिक्षित तथा आत्मनिर्भर नारी भी यदि अपनी स्वयं की पहचान होते हुए भी पुरुष के द्वारा ही पहचानी जाए तो हमें समझना होगा कि आज भी नारी स्वतंत्र नहीं है । तहमीना को दफ्तर के काम के लिए अधिकतर दौरा करना पड़ता है । वहाँ से लौटने पर वह थक जाती है । उसके बाद बेटे रिंकू को पढाना और घर का सारा काम करना उसे थकान से भर देता है । " सिर में इतना दर्द हो रहा था कि नींद तो क्या खाक आती, पर वह मुँह तक कंबल खींचे पड़ी रही । मन बहुत दु:खी लग रहा था और तरह-तरह के विचार उसे घेर रहे थे । कैसे औरतें घर और बाहर दोनों संभाल पाती होंगी। उसने मन-ही-मन निश्चय किया कि वह यह सब छोड़ देगी । क्या फायदा, इसके कारण घर का सुख जाता रहा। .....जिंदगी इस तरह एकदम मशीन हो जाएगी, उसने कहाँ सोचा था।"[17] इसी उपन्यास में एक और पात्र है नाहिदाबाजी। नाहिदाबाजी डॉ.अग्रवाल से अंतर्जातीय प्रेम विवाह करती है । नाहिदाबाजी ने अपने विवाह को लेकर बहुत सुंदर सपने देखे थे। लेकिन विवाह के बाद उसके सारे सपने चूर-चूर कर टूट गये । वह महसूस करती है -" मेरे ही सपने मुझे चुभ गये हैं और उनका जहर अंदर-ही-अंदर मुझे सड़ा रहा है, गला रहा है । अब काँटा नहीं निकलनेवाला है, तुम सच जानो, वह मुझे कब्र में ही सुलाकर दम लेगा "।[18]

मैत्रेयी पुष्पा कृत 'अलमा कबूतरी' में पिछड़े वर्ग की मज़बूरी को दर्शाया गया है कि उनकी बेबसी , परिवार का पालन पोषण करने के लिए लूट-पाट, शिकार का सहारा लेती है , जिसके कारण उन्हें समाज में हीन दृष्टि से देखा जाता है । परन्तु उनके लिए सुविधा तथा सुधार का कोई भी ज़रिया न देखकर उन्हें दंडित किया जाता है । इस जाति के लोगों के साथ अभद्रता का व्यवहार किया जाता है और उनकी स्त्रियों के साथ शारीरिक शोषण किया जाता है । कबूतरी जाति का होने के कारण उस पर हथियार चोरी का आरोप लगाकर पुलिस द्वारा पटक-पटक मारा जाता है । इसके उपरान्त भूरी की मज़बूरी का लाभ उठाते हुए पुरुष वर्ग उसका शारीरिक शोषण करता है ।

चन्द्रकांता कृत 'अपने-अपने कोणार्क' में परिवार की सबसे बड़ी संतान कुनी न जाने कब अपने माता-पिता एवं बड़ी बहन के कर्तव्यों से घिर जाती है , इसी का उल्लेख इसमें है । कुनी सनातन मिश्र की सात संतानों में सबसे बड़ी थी । बड़ा होना ही उसके लिये शाप हो गया था । कुनी की दादी उसे संस्कारों की शिक्षा के चक्रव्यूह में बाँधती रही । लेकिन फिर भी वह सिद्धार्थ को प्रेम करने से स्वयं को रोक नहीं पायी । समय के साथ यह सब बिखर गयी । कुनी के स्वयं के विवाह की उम्र निकल चुकी है। "मेरे सामने ज़्यादा चुहल ठीक नहीं, सहेलियाँ ठिठोली करते चुप हो गईं, मेरी सहज बनने की सभी कोशिश व्यर्थ हुई जा रही है। क्या एक पल को भी लोग भूल नहीं सकते कि मैं अविवाहित हूँ ।"[19] उसके विवाह के आयोजनों में स्वयं पर व्यस्त कर अपनी पीड़ा बाहर नहीं आने देना चाहती । जीवन में व्याप्त सारहीन अकेलेपन ने कुनी के तन और मन दोनों पर नकारात्मक प्रभाव छोड़ा । वह बीमार रहने लगी । कुनी के बप्पा के परिचित डॉ.त्रिपाठी को दिखाना उचित समझा गया, परंतु डॉ.त्रिपाठी के लिये कुनी एक स्त्री देह के अतिरिक्त कुछ इंटर भी न थी,वासनापूर्ति का साधन भी थी ।

नासिरा शर्मा कृत उपन्यास 'शाल्मली' में नायिका शाल्मली अपने माता-पिता की इकलौती संतान है। उसके पिता ने प्रारंभ से ही उसके व्यक्तित्व का निर्माण पूर्ण सजगता से किया है, जिसके फलस्वरुप वह अपनी योग्यता , प्रतिभा और बौद्धिकता के बल पर उच्च-पदस्थ अधिकारी बनती है । वह केंद्रीय लोकसेवा आयोग की परिक्षा देने के बाद वैवाहिक जीवन में प्रवेश करती है । पति की सहमति से इंटरव्यूह देती है आई. ए एस अफसर बन जाती है । वह घर तथा दफ्तर के दोहरे उत्तरदायित्व को अत्यंत सुचारु रुप से वहन करती है । परन्तु कुछ ही दिनों में उसके सुखी जीवन को ग्रहण लग जाता है । उसके पति नरेश में पुरुष का अहं तथा पत्नी की उच्च पदस्थता के प्रति ईर्ष्या का भाव जगते हैं । वह अपनी पत्नी पर अपना शिकंजा कसके दुनिया को अपना प्रभुत्व दिखाना चाहता है । इसलिए वह अनेक तरह से पत्नी को पीड़ा पहुँचाता है। शाल्मली देश की उन्नति और प्रगति के लिए बननेवाली योजनाओं पर पति से चर्चा करना चाहती है। लेकिन नरेश कहता है - "प्लीज़ बोर मत करो ! ज़रा भी मन नहीं है इन दार्शनिक बातों को सुनने का "। उसकी सहेली सरोज द्वारा संबंध-विच्छेद की सलाह देने पर शाल्मली कहती हैं- "[20] पति-पत्नी के शारीरिक संबंध में भी वह अपना अधिकार जताना चाहता है । पत्नी की

इच्छा के विरुद्ध ज़बरदस्ती शारीरिक संबंध रखता है। शाल्मली के विरोध करने पर वह कहता है -" मुझे यहाँ भी अपना अधिकार लेना आता है। प्रेम से या बल से, जिस तरह मैं चाहूँगा । तुम्हारा ररूठना, तुम्हारा अकड़ना व्यर्थ है ।.....तुम जानना चाहोगी पुरुष की दृष्टि से औरत क्या है। भोगने की वस्तु.....वही उसकी पहचान है। इसलिए तुम औरत की तरह रहो, इसी में तुम्हारा उद्धार है और इस घर का कल्याण और गृहस्था का सुख ।" [21] उसकी सहेली सरोज उसे संबंध-विच्छेद की सलाह देती है। परंतु शाल्मली उससे कहती है कि तलाक उसकी समस्या का समाधान नहीं है । "औरतों के पास दो ही अभिव्यक्तियाँ हैं - या तो सर झुका देना या समस्या को अधूरा छोड़ सर कटवा लेना । मेरा विश्वास न घर छोड़ने पर है, न तोड़ने पर, न आत्महत्या पर है, न अपने को किसी एक के लिए स्वाहा करने में है। मैं तो घर के साथ औरत के अधिकार की कल्पना भी करती हूँ और विश्वास भी । अधिकार पाना यानी `घर निकाला´ नहीं और घर बना रहने का अर्थ 'सम्मान को कुचल फेंकना नहीं है । यह जो हमारे मन- मस्तिष्क में अति का भूत सवार हो गया है, वही जीवन के लिए विष समान हैं "।[22] नासिरा शर्मा कृत दूसरा उपन्यास 'ठीकरे की मंगनी' की महरुख की मंगनी टूट जाती है तब वह विवाह न करने का निश्चय करती है। उसका मंगेतर कुछ दिनों बाद उसके सामने फिर से शादी का प्रस्ताव रखता है। घरवाले भी इसके लिए तैयार हो जाते हैं, परंतु महरुख शादी के लिए ही इन्कार कर देती है। वह कहती है -" शादी हर औरत और मर्द के लिए जरुरी है, मगर इतनी भी ज़रूरी नहीं कि वह बेजान दीवारों और बेजबान पलंगों से कर ले ।"[23] अमृता पति के अन्यायों- अत्याचारों को सहन करती-करती थक जाती है । पति जब बच्चों को भी उससे छीन कर ले जाता है तब वह आत्महत्या का प्रयत्न करती है । वह कहती है- " आज तक वह जो चाहते रहे, मैं करती रही इस आशा में कि वह कभी मुझे भी समझेंगे कि मैं क्या चाहती हूँ, मगर मैं थक गई,निचुड़ गई दीदी ।"[24]

मृदुला गर्ग कृत उपन्यास 'उसके हिस्से की धूप' की मनीषा अपने पति जितेन से तलाक लेना चाहती है । जितेन उसे बहुत प्रेम करता है । जितेन मनीषा को घर में सभी प्रकार की सुख- सुविधाएँ भी उपलब्ध कराता है, परंतु कार्यव्यस्तता के कारण मनीषा को समय नहीं दे पाता । मनीषा के पास समय ही समय है। इसलिए वह पति के साथ रोमान्स करना चाहती है। ऐसे पति के साथ मनीषा उदासी के साथ दो वर्ष बिताती है और अंत में सोचती है -" जिस आदमी को उससे बातें करने तक की फुर्सत नहीं , उससे कैसा लगाव। जो रिश्ता रात के अंधेरे में जन्म लेता है और चंद घंटे कायम रहकर दिन के उजाले के साथ खत्म हो जाता उसे तोड़ने में कैसा संकोच।"[25]

निष्कर्ष- हम कह सकते हैं कि स्त्री की समस्या सिर्फ पुरुष ही नहीं वह व्यवस्था भी है जिसने उन्हें विषमतापूर्ण अमानवीय जीवन जीने के लिए विवश किया है। शिक्षा के प्रचार-प्रसार और नारी जागरण के फलस्वरूप आज की नारी में सामाजिक जागरूकता बढ़ने लगी है । परिणामस्वरुप वह परिवार के सीमित दायरे से निकलकर समाज, सृष्टि एवं मानव जीवन का ज्ञान प्राप्त करके अपने व्यक्तित्व का विकास करने लगी है। वह अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होकर पुरुष के समान स्तर एवं समान अधिकार की माँग करने लगी है । आज वह पुरुष की सहचरिणी या दासी नहीं, बल्कि उसकी सहयोगिनी है । फलतः आज वह सामाजिक पराधीनता, पुरुष अधीनस्थता, प्रचलित आदर्शों मान्यताओं तथा रुढियों के बंधनों आदि से मुक्त हो रही है । अपने व्यक्तित्व की सार्थकता के लिए वह निरंतर संघर्षरत दिखायी देती है । वह समाज में अपना अस्तित्व और महत्व स्वयं निश्चित कर रही है।

संदर्भ

1. मनुस्मृति, 5,56-57
2. शेष यात्रा, उषा प्रियंवदा , पृष्ठ 20, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2009।
3. एक जमीन अपनी, चित्रा मुद्गल, पृष्ठ 19, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2019।
4. एक जमीन अपनी, चित्रा मुद्गल, पृष्ठ 34, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
5. आवाँ, चित्रा मुद्गल, पृष्ठ 539, सामायिक प्रकाशन, 2017।
6. छिन्नमस्ता , प्रभा खेतान, पृष्ठ 114, भारतीय

ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली।
7. छिन्नमस्ता, प्रभा खेतान, पृष्ठ 11, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली।
8. छिन्नमस्ता, प्रभा खेतान, पृष्ठ 14, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली।
9. हिन्दी उपन्यास का इतिहास, प्रो गोपाल राय पृष्ठ, 367, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2016।
10. फ्री लांसर , शुभा वर्मा, पृष्ठ, 202, प्रकाशन संस्थान, 2011।
11. फ्री लांसर , शुभा वर्मा, पृष्ठ, 121, प्रकाशन संस्थान।
12. फ्री लांसर, शुभा वर्मा , पृष्ठ, 83, प्रकाशन संस्थान।
13. फ्री लांसर, शुभा वर्मा , पृष्ठ, 154-155, प्रकाशन संस्थान।
14. अकेले-अकेले साथ, हरिमोहन, पृष्ठ, 17, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
15. अकेले-अकेले साथ, हरिमोहन, पृष्ठ, 32, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
16. अकेला पलाश, मेहरुन्निया परवेज़ पृष्ठ 43, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2010।
17. अकेला पलाश, मेहरुन्निया परवेज़ पृष्ठ 44, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
18. अकेला पलाश, मेहरुन्निया परवेज़ पृष्ठ 171, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
19. अपने-अपने कोणार्क, चन्द्रकांता, पृष्ठ 64, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2019।
20. शाल्मली, नासिरा शर्मा, पृष्ठ-43, किताबघर प्रकाशन, 1994।
21. शाल्मली, नासिरा शर्मा, पृष्ठ- 128, किताबघर प्रकाशन।
22. शाल्मली, नासिरा शर्मा, पृष्ठ-164, किताबघर प्रकाशन।
23. ठीकरे की मंगनी , नासिरा शर्मा, पृष्ठ 136, किताबघर प्रकाशन, 2018।
24. ठीकरे की मंगनी , नासिरा शर्मा, पृष्ठ 179, किताबघर प्रकाशन।
25. उसके हिस्से की धूप ,मृदुला गर्ग, पृष्ठ 144, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2019।

◆ असोसिएट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
महाराजास कॉलेज
एरणाकुलम, केरल।

समकालीन साहित्य- सामाजिक संदर्भ

◆ **डॉ. निधि शर्मा**

साहित्य और समाज का गहरा संबंध है।ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। साहित्यकार अपने मन के भावों को कविता, नाटक, एकांकी, कहानी, उपन्यास, संस्मरण, निबन्ध, यात्रा वृत्तांत आदि के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। समाज में घटित घटनाओं से रचनाकार प्रभावित होता है और उन्हें शब्दों की लड़ी में पिरोकर वापस समाज को प्रदान कर देता है। आज का सहृदय पाठक इन भावनाओं के साथ अपने आपको जुड़ा हुआ महसूस करता है।

'समकालीन' शब्द का अर्थ है- वर्तमान से संबंधित,घटित होना और वर्तमान में रहना। समकालीनता का अर्थ समान समय, समान युग, समान आदि अवधि है। समकालीन साहित्य एक समाज के सामाजिक और राजनीतिक दृष्टिकोण से हमें अवगत

करवाता है। इसकी जड़ें समाज से गहरी जुड़ी हैं तथा इसकी पहुँच समाज की तह तक है। भ्रष्टाचार, बेरोज़गारी, निम्न वर्ग की त्रासदी, तकनीकी एवं औद्योगिकरण की अंधी दौड़, सांस्कृतिक विघटन, सांप्रदायिकता की आग, अवसरवादिता, राजनैतिक दबाव, विद्रोह, उत्पीड़न, अलगाव, घुटन, मोहभंग, टूटन, जीवन- मूल्यों का विघटन, आवेश, उग्रता, पीढ़ीगत अंतराल, पति- पत्नी के रिश्ते पर छायी अलगाव, अविश्वास की गर्द आदि विषयों, मुद्दों पर समकालीन साहित्यकार अपनी लेखनी चलाते हैं। मोहन राकेश के नाटक 'आधे -अधूरे' में पति-पत्नी के रिश्ते के खोखलेपन को दर्शाती निम्न पंक्तियां देखिए-"स्त्री: (आवेश में उसकी तरफ मुड़ती) मत कहिए मुझे महेंद्र की पत्नी..... महेंद्र ने ब्याह क्या किया, आप लोगों की नज़र में आपका ही आपसे छीन लिया।.....महेंद्र के बगैर कोई पार्टी जमती नहीं!..... दोस्तों के लिए जो फुरसत काटने का वसीला है, वही महेंद्र के लिए उसका मुख्य काम है ज़िंदगी में। और उसका ही नहीं, उसके घर के लोगों का भी वही मुख्य काम होना चाहिए। तुम फलां जगह चलने से इंकार कैसे कर सकती हो? फलां से तुम ठीक से बात क्यों नहीं करततीं ? तुम अपने को पढ़ी-लिखी कहती हो? .... तुम्हें तो लोगों के बीच उठने- बैठने की तमीज़ नहीं। एक औरत को इस तरह चलना चाहिए, इस तरह बात करनी चाहिए , इस तरह मुस्कुराना चाहिए। क्यों तुम लोगों के बीच हमेशा मेरी पोज़ीशन खराब करती हो? और वही महेंद्र जो दोस्तों के बीच दब्बू- सा बना हल्के- हल्के मुस्कुराता है, घर आकर एक दरिंदा बन जाता है। पता नहीं , कब किसे नोच लेगा, कब किसे फाड़ खाएगा। आज वह ताव में अपनी कमीज़ को आग लगा लेता है। कल वह सावित्री की छाती पर बैठ कर उसका सिर ज़मीन से रगड़ने लगता है। बोल, बोल, बोल, चलेगी उस तरह की नहीं जैसे मैं चाहता हूँ? मानेगी वह सब कि नहीं जो मैं कहता हूँ? पर सावित्री फिर भी नहीं चलती। वह सब नहीं मानती। वह नफ़रत करती है इन सबसे – इस आदमी के ऐसा होने से। वह एक पूरा आदमी चाहती है अपने लिए एक .... पूरा.... आदमी। गला फाड़कर वह यह बात कहती है।"[1] समकालीन साहित्य में सामाजिक ताकतों और कमज़ोरियों को बुद्धिजीवी पाठक वर्ग के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है ताकि वे अपनी सुप्त अवस्था को छोड़कर सचेत हो सके।

'साहित्य' शब्द का अर्थ 'हित सहित होना है'। 'हितस्य भाव: साहित्यम्' अर्थात् हित के साथ होने का भाव ही साहित्य है। जहाँ शब्द और अर्थ, विचार और भाव का परंपरानुकूलता के साथ सहभाव हो, वही साहित्य है। इसलिए साहित्य और समाज एक- दूसरे पर अन्योन्याश्रित हैं।

समकालीन साहित्य का भारतीय संदर्भ 19वीं सदी के देश के सामाजिक और राजनीतिक इतिहास के साथ संबंधित है। देश के स्वतंत्र होने के बाद भारत को राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक आदि कई समस्याओं से जूझना पड़ा। इस अवधि में मानव जाति कई बदलावों से गुज़री।इन बदलावों के फलस्वरूप साहित्य नई विधाओं से पोषित हुआ, जो समाज की वास्तविकताओं और तकनीकी परिवर्तनों की प्रतिक्रिया स्वरूप पनपा ।

समकालीन साहित्य की यह विशेषता रही है कि इसमें विशेष रूप से यथार्थवादी चित्रण तथा सामाजिक जीवन की वास्तविक घटनाओं को अभिव्यक्ति मिली है। इस संदर्भ में नीरजा माधव की कहानी 'ताकि' की कुछ पंक्तियाँ देखिए- "दयानाथ की विधवा पत्नी की लाश उसी के घर से जब तीसरे दिन गाँव के लोगों ने निकाली थी तब भी उन्होंने मन ही मन इनके इकलौते बहू- बेटे और नाते- नातियों को कोसा था, जिन्होंने बीमारी की हालत में भी उस बूढ़ी विधवा को अकेला छोड़ रखा था उनके घड़ियाली आंसू देख कर मरजाद सिंह दाँत पीसते हुए वहां से हट गए थे।" [2] इन वाक्यों में मानवीय संवेदनहीनता, बच्चों का माता-पिता को बोझ समझकर उन्हें अपनी ज़िंदगी से निकाल बाहर करना तथा आधुनिकता के रंग में रंगने का चित्रण है।प्रत्येक

सचेत, संवेदनशील साहित्यकार अपने समाज में घटित घटनाओं से प्रभावित होता है और उन्हें अपनी रचनाओं में वर्णित करता है। समकालीन साहित्यकार समाज से प्रभावित होकर नये संदर्भों को पोषित करता आया है। इस संदर्भ में विद्यानिवास मिश्र के निबंध 'गऊचोरी' का एक उदाहरण देखिए- "गऊचोरी की समस्या का हल निकालना भी मेरा काम नहीं। मैं द्रष्टा बना रहना चाहता हुँ, कर्तव्य की चाह मुझे तनिक भी नहीं है। जानता हूं जब तक खेतिहर सरकार न होगी तब तक न तो बैल की ही चोरी बंद होगी, न ज़मीन ही की चोरी। यह भी जानता हूँ कि राज्यों की छीनी- झपटी भी तभी बंद होगी जब सिद्धांत मनुष्य से छोटे हो जायेंगे। जब तक मनुष्य अपने बनाये हुए सिद्धांतों के आगे बौना बना हुआ है, तब तक यह चोरी घट नहीं सकती। साहित्य की गऊचोरी की रोकथाम भी हो सकती है यदि साहित्यकार शब्द की साधना करके साहित्य लिखने बैठे, जब तक वह शब्द में अपना व्यक्तित्व निविष्ट नहीं कर पाता, तब तक वह चोरी से अपना बचाव नहीं कर सकता।"[3] विद्यानिवास मिश्र ने 'गऊचोरी' निबंध में भूमि- चोरी, साहित्य -चोरी, इंद्रिय- चोरी आदि विभिन्न पहलुओं का वर्णन किया है और मनुष्य को इस प्रकार के सामाजिक विषयों पर सोचने -विचारने के लिए मजबूर कर दिया है।बहुत से ऐसे मुद्दे, विचार जिन्हें दबाने की भरपूर कोशिश की जाती है, उन्हें उजागर करना समकालीन साहित्यकार अपना परम ध्येय समझता है। आजकल राजनैतिक दल धरातल से जुड़े मुद्दों को नज़रअंदाज़ कर सांप्रदायिकता तथा धर्म के नाम पर हो रहे झगड़ों को स्वार्थ-सिद्धि के लिए हथियार की तरह इस्तेमाल कर रहे हैं। इसको उजागर करती रघुवीर सहाय के काव्य- संग्रह 'आत्महत्या के विरुद्ध' की पंक्तियाँ देखिए-

"टूटते- टूटते
जिस जगह आकर विश्वास हो जाएगा कि
बीस साल धोखा दिया गया
वहीं मुझे फिर कहा जाएगा विश्वास करने को
पूछेगा संसद में भोला-भाला मंत्री
मामला बताओ हम कार्रवाई करेंगे
हाय- हाय करता हुआ हां- हां करता हुआ हें-हें करता हुआ
दल का दल
पाप छिपा रखने के लिए एकजुट होगा
जितना बड़ा दल होगा उतना ही खाएगा देश को"[4]

उपर्युक्त पंक्तियों में राजनीति के अनैतिक, आतंकमय, क्रूर, स्वार्थी एवं अमानवीय चरित्र को उजागर किया गया है और मनुष्य की पीड़ा को सामाजिक अर्थ देने का प्रयास किया गया है। समकालीन साहित्यकार अपने साहित्य में इन सबको वर्णित कर समाज को आईना दिखाने का प्रयास कर रहा है ताकि जिस विनाश की ओर हम अग्रसर हैं उसे त्यागकर विकास के पथ पर आगे बढ़ सकें। किसी भी रचनाकार का लेख/ रचना तभी प्रासांगिक कहलाएगी जब वह सामाजिक समस्याओं, सामाजिक परिवेश और सामाजिक सरोकारों के प्रति पाठक वर्ग की भावनाओं को उद्वेलित कर सके। इस विषय में विश्वनाथ तिवारी का कहना है- "लेखक का रचना दायित्व दोनों एक- दूसरे में घुले -मिले होते हैं। वह अपनी रचना के प्रति जितना प्रतिबद्ध होता है उतना ही अपने चारों ओर की ज़िंदगी के प्रति भी। अंदर और बाहर के दोनों ही संसार उसके भीतर एक हो जाते हैं।"[5]

किसी भी समाज को वहाँ के लोगों की सोच, उनके आचरण से जाना पहचाना जा सकता है। अगर हम भारतीय सामाजिक संरचना की बात करें तो इसमें समाज के प्रति मौलिक चिंतन प्रकट होता है। भारतीय सामाजिक जीवन का लक्ष्य सत्य की खोज रहा है। समकालीन साहित्यकार बिना किसी लाग लपेट के सत्य के विविध रूपों को अपने साहित्य में दर्शाता है। इसमें मानव जीवन के यथार्थ का निरूपण किया जाता रहा है। इसलिए मानव जीवन और समाज का सफल वर्णन इसमें हुआ है। कोई भी साहित्यकार अपने समय के समाज से प्रभावित होता है और उसी का वर्णन वह अपनी रचनाओं में करता है। समकालीन साहित्यकार अपनी रचनाओं की घटनाओं, कथानकों तथा चित्रित पात्रों को समाज से लेकर समाज को ही अर्पण कर देता है ताकि समाज को सचेत कर सके। विपरीत

परिस्थितियों और सामाजिक प्रभावों से लड़ने के लिए समाज को तैयार कर सके। जगदीशचंद्र माथुर के एकांकी 'रीढ़ की हड्डी' का एक उदाहरण प्रस्तुत है-"उमा (हल्की लेकिन मज़बूत आवाज़ में) क्या जवाब दूं बाबूजी! जब कुर्सी- मेज़ बिकती हैं तब दुकानदार कुर्सी- मेज़ से कुछ नहीं पूछता, सिर्फ खरीददार को दिखला देता है। पसंद आ गई तो अच्छा, वरना.....

रामप्रसाद- (चौककर खड़े हो जाते हैं) उमा, उमा!

उमा -अब मुझे कह लेने दीजिए बाबूजी। ये जो महाशय मेरे खरीददार बनकर आए हैं, इनसे ज़रा पूछिए कि क्या लड़कियों के दिल नहीं होते? क्या उनको चोट नहीं लगती? क्या वे बेबस भेड़ बकरियाँ हैं, जिन्हें कसाई अच्छी तरह देख भालकर खरीदते हैं ?"[6] इस एकांकी में उमा के माध्यम से नारी समाज के साथ हो रहे अन्याय का वर्णन है, साथ ही साथ एक पढ़ी-लिखी युवती का अपने अधिकारों के लिए आवाज़ उठाने का वर्णन भी है। समकालीन साहित्य की नींव को मज़बूत करने में साहित्यकारों के बदलते जीवन-दर्शन ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। परंपरागत भारतीय दृष्टिकोण मूल्यों, आदर्शों, नैतिकता, सदाचार, संस्कार आदि को व्यक्ति और समाज दोनों के लिए परम आवश्यक या यूँ कहें जीवन का आवश्यक अंग मानता आया है जबकि समकालीन साहित्यकार इनसे मुक्त होकर अपनी लेखनी चलाते हैं। वे समकालीन समस्याओं, मनोवैज्ञानिक स्वरूप, घटनाओं में यथार्थवादी दृष्टिकोण को महत्त्व देते हैं न कि झूठे आदर्शवाद, कोरी कल्पनाओं को महत्ता देते हैं। 'मिस्टर अभिमन्यु' नाटक की निम्न पंक्तियों से यह पूर्णत: स्पष्ट हो जाता है - "राजन- मैं भी तब से वह भूल ही गया..... मुझे तब इतना नहीं पता था कि यहाँ हर मूल्य की जड़ में वही गुलामी है। आज्ञाकारी होना किसी ऐसे चक्रव्यूह में पैर रखना है..... मुझे इस धोखे का पता नहीं था।"[7] परंपरागत पूर्वाग्रहों को अपनी पीठ पर लादे उन्हें मजबूरन ढोने का काम समकालीन साहित्यकार नहीं करता। परंपरागत सोच को दरकिनार कर समकालीन साहित्यकार अपने समाज के यथार्थ रूप को अपनी रचनाओं के माध्यम से सबके समक्ष प्रस्तुत करता है इस संदर्भ में 'ताकि' कहानी का एक उदाहरण देखिए- "दिखा देना कि ग्राम समाज की ज़मीन पर वृक्षारोपण किया। महंगे- महंगे पौधों की खरीद दिखा देना। मरजाद सिंह ने पुनः उसे समझाया था।

पर कक्का, मौका मुआयना हुआ तो....?

तो क्या ससुर के नाती, पौधे सूखते नहीं क्या इतनी प्रचंड गर्मी से सूख गए। अगली बार इसी के नाम पर तालाब खुदवाने का पैसा मंज़ूर करवा लेना।"[8] उपर्युक्त पंक्तियों में समाज में पनप रहे भ्रष्टाचार, लूट -घसूट को दर्शाया गया है। समकालीन साहित्यकार मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण रखते हुए मनोवैज्ञानिक समस्याओं को यथार्थ रूप प्रदान कर अपनी रचनाओं में दर्शाता है। एक उदाहरण देखिए -"मैं यहाँ थी तो मुझे कई बार लगता था कि मैं एक घर में नहीं, चिड़ियाघर के एक पिंजरे में रहती हूँ..... जहाँ आप शायद सोच भी नहीं सकते कि क्या-क्या होता रहा है यहाँ? डैडी का चीखते हुए मम्मा के कपड़े तार-तार कर देना उनके मुँह पर पट्टी बाँधकर उन्हें बंद कमरे में पीटना, खींचते हुए गुसलखाने में कमोड़ पर ले जाकर मैं तो बयान भी नहीं कर सकती कि कितने-कितने भयानक दृश्य इस घर में देखे हैं मैंने। कोई भी बाहर का आदमी उन सब को देखता- जानता तो यही कहता कि क्यों नहीं बहुत पहले ही ये लोग?"[9] प्रमुख समकालीन साहित्यकारों में काशीनाथ सिंह, दूधनाथ सिंह, मुक्तिबोध, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह, धूमिल, निर्मल वर्मा, त्रिलोचन, ओमप्रकाश वाल्मीकि, उदय प्रकाश, लक्ष्मीनारायण लाल, चित्रा मुद्गल, नीलाक्षी, कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग, प्रभा खेतान, सुधा अरोड़ा, मंजुल भगत, पुष्पा मैत्रेयी ,उषा प्रियंवदा,अलका सरावगी, मोहन राकेश, जगदीश चन्द्र माथुर, विद्यानिवास मिश्र, नीरजा माधव, अंजली काजल, सूर्यबाला, नमिता सिंह आदि हैं। ये सभी साहित्यकार सामाजिक बुनियादी विषयों के प्रति वचनबद्ध एवं कलमबद्ध हैं। समकालीन साहित्य में

समकालीन परिवेश, बदलती परिस्थितियों, युगीन समस्याओं तथा जीवन के विविध संघर्षों को चित्रित किया जाता है। आज का मनुष्य सहज, स्वाभाविक जीवन को न अपनाकर कृत्रिम जीवन, दिखावे की ज़िंदगी जीने में अपनी शान समझता है। नमिता सिंह की कहानी 'बबली यहीं रहती है' के निम्न वाक्यों से इस पर प्रकाश डाला गया है - "भाभी, मैंने कहा कि प्रोविडेंट फंड से लोन ले लेते हैं, आ जाएगी नई मारुति! अब इन्हें चाहिए चार-पांच लाख वाली गाड़ी। तो इंतज़ार करो! हर साल तो फंड से लोन ले लेती हैं। पैसे जमा हो तो कैसे।' यह लीजिए !अब पिछले दिनों क्या अपने लिए लोन लिया था मैंने? अभी पूरा घर रिनोवेट कराया। कितनी तोड़-फोड़ हुई। सारा फर्नीचर बदला गया। चार लोग आयें तो ढंग का घर तो दिखे। चार लोग कौन मैडम! सीधे कहिए कि बबली आनेवाली थी। सपरिवार, सो घर नए सिरे से बनाया -सजाया गया।"[10] मानवीय संवेदना को त्यागकर अपने को बुद्धिजीवी कहनेवाले मानव में संयम,संतोष,सहनशीलता, शाँति की कमी होने के कारण वह निरंतर आधुनिकता की अंधी दौड़ में भागा जा रहा है। तकनीकी, वैज्ञानिक युग ने सामाजिक जीवन में एक तूफ़ान ला खड़ा कर दिया। इस संदर्भ में उपन्यास 'रह गई दिशाएँ इसी पार'का एक उदाहरण देखिए-"अब इस इंसानी खोल से किस महामानवी खोल में किस महाकाश में छलाँग लगाने और किस चाँद- सितारे को छू लेने का इरादा है मेरे दोस्त" [11]

माना जाता है कि तकनीकी, वैज्ञानिक विकास पर ही समाज का विकास निर्भर करता है, परंतु इसकी अंधी दौड़ हमें विवेकहीन बना रही है। हममें सोचने-समझने की शक्ति समाप्त हो रही है और हम इस मशीनी युग में एक यंत्र बनकर रह गए हैं। समकालीन साहित्यकारों ने आज के प्रश्नों, समस्याओं पर विचार किया है। मानवीय रिश्ते तार-तार हो चुके हैं। सामाजिक अन्याय, स्वार्थ-सिद्धि, नारी-शोषण, मूल्यों का विघटन, आर्थिक विषमता, कुंठा, निराशा, अकेलापन, अजनबीपन, उत्पीड़न आदि समस्याएँ मुँह बाए खड़ी हैं। अमानवीयता के इस नंगे नाच को रोकना सजग, सहृदय, समकालीन साहित्यकार अपना कर्त्तव्य समझता है। इससे संबंधित अंजलि काजल की कहानी 'माँ डरती है' की निम्न पंक्तियां देखिए - "पर वह नहीं समझा सकती उन्हें कि वह किस -किसको जूते मारे! रास्ते -भर में ऐसी न जाने कितनी घटनएँ होती हैं, पर क्या उसे रास्ते- भर जूता उतारकर चलना चाहिए? पर वो चाहती ज़रूर हैं! चाहती है वो इक्कीसवीं सदी की ओर बढ़ते और कीड़े -मकौड़ों की तरह विचरते इस समाज के मुँह पर थप्पड़ मारना, जिसने अभी तक नारी को उसके अंगों से अलग करके समझना शुरू नहीं किया! चाहती है वो जूते लगाना इस कायर , बौने समाज को जो औरत को नंगा करके तालियां बजाना जानता है।"[12]

अंतरराष्ट्रीय साहित्य के क्षेत्र में समकालीन भारतीय साहित्य अपनी मौलिकता के लिए विशेष स्थान रखता है। समकालीन भारतीय साहित्य पश्चिमी दर्शन और विचार से प्रभावित है। इसका दायरा विस्तृत है और ये विभिन्न शैलियों को अपनाए हुए हैं। समकालीन साहित्य बदले हुए परिवेश एवं समाज के साथ निरंतर अपने को नये रूप में ढालता रहा है। इसमें वर्तमान जटिल यथार्थ, क्षण- क्षण बदलते परिवेश तथा बदलते हुए जीवन -मूल्यों को विविध आयामों से देख-परख कर अपनी लेखनी को माध्यम बनाकर जीवन के यथार्थ से टकराने की क्षमता है और वे जीवन की भोगी हुई सच्चाई को पूरी ईमानदारी व निड़रता के साथ अभिव्यक्त करने में सक्षम हैं। वे युगीन परिवेश के प्रति पूर्णतः जागरुक हैं। इस संवेदनहीन मशीनी युग में व्यक्ति अपने आपको अकेला, भयभीत, आतंकित, असुरक्षित महसूस कर रहा है। अंजलि काजल अपनी कहानी 'माँ डरती है' में लिखती हैं- "जसवीर के इतनी देरी तक न घर लौटने के कारण उसे बुरे ख़याल आते हैं। पर ऐसे वक्त बुरे ख़याल क्यों आते हैं ? ऐसी घड़ियों में हम नकारात्मक ही क्यों सोचते हैं? उसने अपने आप से पूछा, शायद हर आदमी अकेला है, असुरक्षित है। आदमी

की जान बहुत सस्ती हो गयी है। किसी आदमी के दुर्घटनाग्रस्त होने की या मर जाने की घटना आम-सी हो गयी है। कहीं पर बस गड्ढे में गिर गई, कहीं आतंकवादियों ने सामूहिक हत्याएँ कीं, किसी लड़की के साथ बलात्कार किया गया या उस पर एसिड फेंका गया, किसी को छुरा घोंपा गया। ये खबरें हमारी दिनचर्या का हिस्सा बन गयी हैं। हम उन्हें सुनते हैं, कुछ देर अफ़सोस जाहिर करते हैं और फिर उन्हें भूल जाते हैं। पर क्या हम सचमुच भुला पाते हैं? जब हमारा कोई अपना घर लौटने में ज़रा- सी भी देर करता है, ये खबरें परत- दर- परत हमारे सामने उधड़ने लगती हैं।"[13]

समकालीन साहित्य में केवल कुछ विषयों को ही नहीं लिया जा सकता क्योंकि समय के साथ-साथ समाज में परिवर्तन होता जाता है। समकालीन साहित्य की लेखन-सामग्री और संदेश भी बदलते हैं। यह यथार्थवादी विचार को बनाया हुआ है उसमें सार्वभौमिक सत्य, घटनाएँ, भावनाएँ होंगी जिसे प्रत्येक मनुष्य महसूस कर पायेगा। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो कभी समाप्त नहीं होगी। हर काल,युग में गतिमान रहेगा। परिस्थितियों व समयानुसार इसके स्वरूप में लगातार परिवर्तन होता रहेगा यह नई-नई अवधारणाओं, सिद्धांतों एवं विचारों को ग्रहण करने में सक्षम है। इसे किसी एक सिद्धांत, अवधारणा या विचार के साथ जोड़ना संभव नहीं है क्योंकि यह अतीत और भविष्य को वर्तमान के साथ जोड़कर निरंतर प्रवाहमान है।

संदर्भ-

1- मोहन राकेश, आधे अधूरे, पृष्ठ 90-91, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2010।

2- चेतन दुबे 'अनिल' (सं०) इक्कीसवीं सदी की इक्कीस कहानियाँ, पृष्ठ 81; शाश्वत प्रकाशन , दिल्ली, 2006।

3- सरस्वती भल्ला (सं०) निबंध- दशक, पृष्ठ 101, वाणी प्रकाशन , नयी दिल्ली, सं.2010।

4- कुमार कृष्ण, समकालीन कविता का बीजगणित, पृष्ठ 24, 25, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं.2004।

5- विश्वनाथ तिवारी, रचना के सरोकार, पृष्ठ 32; वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं.2015।

6- वीरेंद्र कुमार मिश्र (सं०) एकांकी- संकलन, पृष्ठ 100; वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं.1995।

7- लक्ष्मीनारायण मिश्र, मिस्टर अभिमन्यु, पृष्ठ 20, नरेश पब्लिशिंग हाउस, नोएडा,सं.1996।

8- चेतन दुबे 'अनिल' (सं०) इक्कीसवीं सदी की इक्कीस कहानियां, पृष्ठ 82; शाश्वत प्रकाशन , दिल्ली, 2006।

9- मोहन राकेश, आधे- अधूरे, पृष्ठ 83,84; राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2010।

10- चेतन दुबे 'अनिल' (सं०) इक्कीसवीं सदी की इक्कीस कहानियां, पृष्ठ 71; शाश्वत प्रकाशन , दिल्ली, 2006।

11- संजीव, रह गई दिशाएं इसी पार, पृष्ठ 161; राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2018।

12- चेतन दुबे 'अनिल' (सं०) इक्कीसवीं सदी की इक्कीस कहानियां, पृष्ठ 26; शाश्वत प्रकाशन , दिल्ली, 2006।

13- वही, पृष्ठ 28

◆ हिंदी विभाग

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग

राजकीय महाविद्यालय,

नगरोटा बगवां, हिमाचल प्रदेश

nidhieera@gmail.com

मो.7807504895

नाकोहस' उपन्यास में चित्रित मानवीय अभिव्यक्तियों का शासन

◆ डॉ. संजीव कुमार ए

सार

देश व समाज के स्वास्थ्य केलिए बहुस्वरता की ताकत होना बहुत ज़रूरी है। समकालीन जनतांत्रिक समाज में किसी भी विषय पर स्वतन्त्र अभिव्यक्ति की जगह विलुप्त होती जा रही है। जनता की अभिव्यक्ति को आहत भावनाओं का एक काला समाज कब्जा कर चुका है। प्रत्येक व्यक्ति को उनकी पहचान संबंधी चरित्र के मुताबिक़ आपस में बाँटा गया है। इसलिए उनके विविध विचारों व तर्कों को समाज वैधता नहीं देता है,उल्टा उन्हें बहुसंख्यक समर्थक और बहुसंख्यक विरोधी के खेमे में रखा जाता है। ऐसे समाज में कभी भी किसी भी वर्ग की भावनाओं पर ठेस पहुँचता रहता है। यहाँ सरकार भी मानवीय अभिव्यक्ति के सम्पूर्ण शासन तंत्र में शामिल हो गयी है। इस नये समाज में सत्ता दल ने 'नाकोहस' (नेशनल कमीशन ऑफ़ हर्ट सेंटीमेंट्स) नामक संस्था का गठन किया है जिसकी निगाह जनता पर हमेशा बनी रहती है। समाजतंत्र में नाकोहस हर एक व्यक्ति के मन में, बेडरूम में, टी.वी, मोबाइल व अन्य तकनीकी माध्यमों के ज़रिये दिन-रात उनके साथ विहार करता रहता है और इस नयी गठित सामाजिक लहर में बह जाने की प्रेरणा देता है। इसके विरुद्ध खड़ा हो जाना देश व खुद दोनों केलिए हानिकारक होता है। नाकोहस के पास पूरे कौम की जानकारी होती है। यदि लोगों की भावना समाज या सत्ता दल की मुख्य भावना के विरुद्ध हो जाता है तो अपने सदस्य 'बौनेसर' (बौद्धिक नैतिक समाज रक्षक) की सहायता से जनता को सही रास्ता तक लाने का पूरा प्रबंधन करके रखा है। इसकेलिए उनके पास विविध 'पेर्सुयेशन' तकनीक भी होता है।

पुरुषोत्तम अग्रवाल द्वारा रचित 'नाकोहस' आज के समय के समाज की गिरती जनतांत्रिक मूल्यों की ओर एक आइना दर्शा रहा है। इस सम्पूर्ण उपन्यास में देश व समाज में ध्रुवीकरण करके लोगों को अपने ही मत एवं तर्कों के आधार पर शासन कराने की एक सहज प्रक्रिया पैदा होने का एक विकट दृश्य समाने आता है। सत्ता दल के पक्ष में होनेवाले नाकोहस जैसे निगरानी समूह और उसकेलिए काम करनेवाले लोगों के कार्य एक जनतांत्रिक समाज के हर एक लगाम को तोड़ देते हैं। मानवीय स्वतन्त्र अभिव्यक्ति की ऐसी सफाई के दौर में लोग खुद अपने में बंधित दिखाई पड़ते हैं। लोग दूसरों पर चिंता करने की भी क्षमता खो चुके हैं।

प्रस्तुत उपन्यास 'नाकोहस' में नायक'सुकेत' एक युनिवेर्सिटी की शोध संस्था का प्रोफेसर है, जो पहले से ही अपने लेख के कारण दक्षिण पंथी दल के छात्र-छात्राओं की आँखों का काँटा बन चुका है। अपने लेख के बारे में यों कहता है "परम्परा, संस्कृति और धर्म के नाम पर चल रही हिंसक राजनीति के विरुद्ध पॉलिटिकल आर्ग्यूमेंट में हर्ट सेंटीमेंट्स का क्या सवाल है?"[1] इसी लेख के कारण विरोधी छात्र दल ने सुकेत के घर को हमला किया है। विश्वविद्यालय में सुकेत के लेख के बारे में स्टाफ मीटिंग के वक्त सेवानिवृत्त त्रिपाठी सुकेत से कहता है "तुमने ज्वाइन किया था तब मेरी सलाह तुम्हें अच्छी नहीं लगी थी...ऑलवेज़ बी ऑन दि राइट साइड ऑफ़ दि अथॉरिटी..फिर एक सलाह देता हूँ मानो न मानो...याद ज़रूर रखना। इस ज़माने का मन्त्र समझ लो, सुकेत...ऑलवेज़ बी ऑन दि राइट साइड ऑफ़ दि हर्ट सेंटीमेंट्स।"[2] इससे साफ़ सिद्ध होता है कि आज के बदलते सामाजिक माहौल में ज़िंदगी जीने का एक नया उपाय ढूँढने की ज़रूरत बन गयी है।व्यक्ति अपना विचार डर के सामाजिक वातावरण में खुल के अभिव्यक्त नहीं कर पा रहा है। आहत भावनाओं के सही पक्ष पर खड़े होने से सामाजिक, साहित्यिक और व्यक्तिगत रूप से बेहतर होने की स्थिति आ पहुँची है।

आज का नया सामाजिक माहौल हर व्यक्ति को एक पूर्व निर्धारित आख्यान में बाँध लेता है। इसके अनुसार व्यक्तियों को हाशिएकृत करने का एक तरीका बहुसंख्यक लोग अपना रहे हैं। इसके सम्बन्ध में उपन्यास 'नाकोहस' में सुकेत पर लगानेवाला दूसरा दोष यह था कि वह बहुसंख्यक दल के मीटिंग के दौरान अपने भाषण में अल्पसंख्यकों, दलितों को अपने ही गाँव में शरणार्थी बनने का ज़िक्र किया जिससे नर पुंगव झल्लाए हुए गाली देता है। इसके अलावा उपन्यास में उसके दोस्तों के प्रति आरोपित दोष है "हिन्दू घर में जन्मे सुकेत और ईसाई घर में जन्मे रघु के सन्दर्भ में बीमारी की वजह यह बताई जाती थी कि उनकी चेतना के पाँव उनकी

सांस्कृतिक परम्परा की बेड़ियों में जकड़े हुए हैं। शम्स के बारे में निदान यह था कि वह पश्चिमी मीडिया और बौद्धिकता के असर में अपनी परम्परा से घृणा करनेवाले- सेल्फ-हेटिंग- मुसलमान में बदल गया है।"[3] वर्तमान सामाजिक अवस्था में हर एक नागरिक को एक विभाग या एक समुदाय की पहचान पत्र के हिसाब से उनके कर्म को निशाना साधने, गाली गलोज से चुप्पी कराने की सामाजिक माहौल पैदा हुआ है। इस तरह के भिड़ी समाज का कोई सिर पैर नहीं होता है। वह आज के समाज की किसी भी आहत भावनाओं से ठेस होनेवाला बन सकता है।

उपन्यास में सुकेत अपने घर में अपने दोस्तों के साथ इस बदलते हुए सामाजिक वातावरण पर चिंता प्रकट करते हुए बताता है "हम लोग पहले भी तो इसी तरह की बातें करते थे...लेकिन इस तरह पिटते नहीं थे। गर्मी-गर्मी हो ही जाए, मार-पीट की नौबत आ ही जाए तो भी आम तौर से हमदर्दी हमारे जैसे लोग ही पाते थे।समाज अपने आप से सवाल करने केलिए तैयार था..अब हम ही से कहा जाता है – फ़िज़ूल पंगा क्यों लेते हो, भावनाओं को क्यों ठेस पहुँचाते हो ? कितनी बदल गई हैं चीजें।"[4] इससे साफ़ है कि समकालीन समाज में लोगों का मन असहिष्णुता और कोमल होती भावनाओं से ओतप्रोत हुआ है। इतनी सिकुटी हुई मानिसकतावाला समाज वाकई देश को ओर सुरंग पे ले चलता है।

वर्तमान समय में सत्ता व्यवस्था के संस्थापन जैसे नाकोहस(नेशनल कमीशन ऑफ़ हर्ट सेंटीमेंट्स) की पहुँच व्यक्तियों के इर्द-गिर्द सदा बनी रहती है। मानव सुरक्षित होनेवाले घर में भी उनके भौतिक और मानसिक दबदबा का निशान मिलता है। उपन्यास में सुकेत के घर पर उनके बेडरूम तक नाकोहस के बौनेसर (बौद्धिक नैतिक समाज रक्षक) का सदस्य 'मिस्टर चौड़ासिंह' और उसके साथी घुसे आते हैं और उसे अन्य लोगों की तरह ज़बरदस्ती इलाज केलिए उठाके ले जाते हैं। गाड़ी में नाकोहस का प्रतिनिधि सुकेत से कहता है कि नकोहास में पेश होने की देर है कि वह सही तरह से सोचने को भी सीख लेगा। चौडासिंह धमकाते हुए कहता है "आप कोई पहले आदमी तो नहीं न जाने कितनों को पेश कर चुका हूँ..और न जाने कितनों को पेश करना है।"[5] इससे सिद्ध है कि समाज में सत्ता की वैधता से एक निगरानी समिति का गठन हुआ है जिसे पूर्ण स्वतंत्रता है कि वे व्यक्तियों को किसी तरह काबू में रखेँ। यह हमारी घुटती सामाजिक गतिविधियों और दबती स्वतंत्रता का एक प्रतिबिम्ब है।

नाकोहस काल में सम्पूर्ण दुनिया में बुद्धिजीवियों की बुद्धि सही ठिकाने में लाने की परिपाटी शुरू हुई है। बुद्धिमता तो इसमें है कि वक्त के साथ व्यक्ति बदले, आहत भावनाओं के कोरस में सुर मिलाये। ज़्यादातर लोग बहुत तेज़ी से सुधर रहे हैं। उपन्यास में यों व्यक्त है "इस काल में आप टी.वी नहीं देखेंगे, टीवी आपको देखेगा..सोचने का अपराध करने से बचाएगा..चौबीसों घंटे साथ रहेगा..जागते-सोते,खाते-पीते, चढ़ते-उतरते, हगते-मूतते,अपनी मर्ज़ी रुकेगा, जैसे अभी तुम्हारे मोबाइल पर रुक गया..हर वक्त टीवी का साथ मस्त एकदम।"[6] यह सुनकर सुकेत का मन झुंझला उठता है कि न जाने कितने 'पेर्सुयेशन' तकनीक है इसके पास और कहता है कि "अब मालूम पड़ा कि असली रिमोट, हर चैनल का मास्टर रिमोट तो किसी और के हाथ में है। और वह हाथ तो हमसे इतना दूर...इतना रिमोट है कि देख तक नहीं सकते...बढ़िया,बहुत ही बढ़िया!"[7] यह व्यक्त करता है कि नाकोहस द्वारा नियंत्रित नूतन तकनीक और अन्य उपलब्धियाँ व्यक्तियों के साथ हमेशा बनी रहती है। यह देश के अनगिनत लोगों को टी.वी मीडिया, मोबाइल एवं अन्य तकनीकी माध्यमों के द्वारा 'कंडीशन' कराने की परीपाटी है जिसे व्यक्ति चाहे तो भी बदला नहीं सकता है। यह आदमी के सहज सोच एवं विचार को प्रभावित करके उसे सत्ता दल के मुख्य विचार के अनुकूल बना डालता है।

उपन्यास में घर पर रघु रूबेन आज के खौफ के स्निग्ध युग के कारण अस्वस्थ और चिंतित होता है। वो इन्टरनेट में अपने कम्प्यूटर स्क्रीन पर एक चोटिल व्यक्ति अपने साथी के उष्ण, ताज़े रक्त में नहाये हुए देखता है। वह सोचता है कि आज पूर्व–पश्चिम, उत्तर – दक्षिण में इसी तरह के गुस्ताखों की वारदातें सामने आ रही हैं। इसके कारण उसके मन में व्यक्तिगत रूप से अनुभवित शारीरिक उत्पीड़न की स्मृति भी आ पहुँचती है। रघु एक दंगे के सिलसिले में पुलिस अधिकारियों एवं साम्प्रदायिक दंगेवालों के सम्बन्ध को अगुआई करने चला था। लेकिन उसकी मार-पिटाई का असली कारण तो यह बताया था कि "धर्मांतरण के ज़रिये ईसाईयों की तादाद बढ़ाकर हिन्दुओं को हिन्दुस्तान में ही मैनोरिटी में बदलने की कांस्पीरेसी कर रहे मिशनरियों का एजेंट हूँ, इसलिए उस धर्मरक्षक एस.च.ओ के खिलाफ अभियान

चला रखा है।"[8] इसका नतीजा यह था कि उसकी एक टाँग पर सदा केलिए स्टील रोड डालना पड़ा है। इस पूरे मामले में सुकेत का अभिप्राय है कि डर ऐसी एक भावना है जिसके कारण लोग बिना कोई पश्चाताप होते इतनी बेख़ौफ़ चीज़ें करने की शक्ति प्राप्त करते हैं। मन का यह डर गुस्से के किसी पल के साथ बैठ जाये तो मन में बैठे डर को हमले का रूप लेने में ज़्यादा देर नहीं लगती है। रघु भी सुकेत की इस बात को मानता है और सोचता है कि "कुछ लोग तो खौफ के ज़रिये ही दुनिया बदलना चाहते हैं...क्या सचमुच नामुमकिन है ऐसा बदलाव जिसकी नींव में खौफ न हो?"[9] नफ़रत और हिंसा का यह सामाजिक वातावरण किसी को भी एक पल में चोट दिला सकता है। यहाँ मानव को खुद पता नहीं चल रहा है कि ऐसी आबोहवा का बदलाव कैसे संभव हो रहा है। भिड़े हुए एक समाज में एक भी चिंगारी तो आग का आफत पैदा कर सकती है।

उपन्यास में शम्स सुकेत के घर से अपनी गाड़ी में जाते वक्त उन्हें रघु और शम्स के कॉलेज का दिन याद आता है। कॉलेज में शमसुद्दीन को पूरी तरह इस्लाम विरोधी, सेल्फ हेटिंग मुसलमान, विदेशी एजंट और मजोरीटेरीयन मैंडसेट में बदलने का लेबल चढ़ा था। उस समय सुकेत ने भी उनसे कहा था कि वह माइनॉरिटीज़ व उनके हमदर्दों की भावनाओं को ठेस पहुँचाने जा रहा है। प्रश्न उसकी धर्मनिरपेक्षिता पर भी आता है। इसके बदले शम्स की प्रतिक्रया है कि "छोड़ो यार, यह ससुरी धर्मनिरपेक्षता तो अपने देश में आहत भावनाओं की एम्बुलेंस बनती जा रही है।"[10] यह व्यक्त करता है कि बहुसंख्यक हो या अल्पसंख्यक यदि किसी भी उसकी गलतियों पर सवाल करता है तो वह झट से एक 'लेबल' डालकर उन्हें दरकिनार करता है। वर्तमान समाज में किसी भी वर्ग के लोग व संस्थाएँ जो बहुसंख्यक व अल्पसंख्यक भावना के विरोध में होती हैं तो उसे अवैध और बेकार साबित करने में ज़्यादा वक्त नहीं लगता है।

उपन्यास में सुकेत व उनके तीनों बुद्धिजीवी दोस्तों को नाकोहस एक मैत्रीपूर्ण वार्ता सत्र पर ले जाता है। नाकोहस का गिरगिट रूपी सदस्य बोलता है कि आत्मघोषित बुद्धिजीवियों को या समाज विरोधी हरकत करनेवालों को इसी तरह छूट देते रहना अब ठीक नहीं है, इन्हीं लोगों को सम्मान की तमाशा तो बहुत हो चुका है। अब बात है अनुशासन की, इसलिए बौनेसर यह देखता है कि सब बुद्धिजीवी, गैर बुद्धीजीवी अब औकात पर रहें।आज का युग "इन्फोटैनमेन्ट" का युग है, यानी सूचना और मनोरंजन की दुनिया है। इसकेलिए मानव को विभिन्न तकनीकी साधनों को उपलब्ध कराया है।नाकोहस बताता है कि इक्कीसवीं सदी में मानव को यह करना है कि 'कंक्रीट के जंगल में निवास करे, सूचना के वन का विकास करे और मनोरंजन के उपवन में विहार करे'। इक्कीसवीं सदी के 'टेक्नेक्चुअल' होते समाज में सभी समस्याओं का समाधान टेक्नोलॉजी ही देगी। इसके सन्दर्भ में नाकोहस का कहना है कि "लेखक-फेखक, कलाकार-सलाकार, बुद्धिजीवी-फुद्धिजीवी चूतिये भैनचो दुनिया को दे क्या देंगे..घंटा..? इंटेलेकच्युल होना पाप है– टेक्नेक्च्युअल सबका बाप है।"[11] इसका मतलब तो साफ़ है कि पूरी तरह से बौद्धिक और मानसिक अंधापन भरे समाज को निर्मित करें जहाँ तर्क-वितर्क का मतलब ही नहीं जाननेवाले एक गुमराह जनता को पनपे एवं विस्तारित करें। समाज की मुख्य भावना का जिन टेक्निकल उपकरणों के सहारे व्यक्तियों तक संप्रेषण होता है, उसे सत्य और उसूल मानकर चलना है। व्यक्तियों को अपनी बौद्धिक क्षमता उपयोग करना मना है। इस तरह राष्ट्र के बहुसंख्यक लोगों की भावनाओं के हिसाब से देश की दशा और दिशा बदल लेने की कार्य-योजना हो रही है।

नाकोहस ऐसी एक सत्ता व्यवस्था पद्धति है जिसकी आस्था पावर से, मानेजमेंट से है जिसके ज़रिये समाज के सभी लोगों पर कड़ी निगाह रख देती है और ज़बरदस्ती लोगों को सही मार्ग में लाना पड़ता है। नाकोहस की व्याप्ति पर नाकोहस का सदस्य जिसका शक्ल गिरगिट जैसा है, वह कहता है कि"कहाँ तक जानोगे सुकेत, कौन-कौन है नाकोहस का एजेंट...समझते क्यों नहीं..नकोहस को पर्यावरण बनना है...पसर रहे हैं हम हवा में...गूँज रहे हैं आवाज़ों में..पहुँच रहे हैं रिश्तों तक..मुस्कानों तक..आँसुओं तक, काम बहुत तेज़ी से चल रहा है...हर तरफ...हर जगह..हर शख्स..हर रिश्ता।"[12] नाकोहस की व्याप्ति मानव की सम्पूर्ण वजूद तक है। ऐसे एक सामाजिक वातावरण में जनता का नित भय से घुट-घुट कर जीना पड़ता है। इस नये सामाजिक माहौल में मानवों पर पहचान संबंधी रेखा खींचकर एक आचारसंहिता के तहत अपना मत व्यक्त करने का ही अधिकार है। उससे अलग विषय पर कुछ कहने का अधिकार से पूरी तरह से वंचित है। इस आचार संहिता

के अनुपालन का कर्तव्य नाकोहस पर निर्भर है।

उपन्यास में नकोहस से होनेवाले डराने-धमकाने, मारने-पीटने के सत्र की यादों के बाद सुकेत को होश आता है तो वह अपने घर में है। उसे लगा था कि यह सब एक दुस्वप्न था। इतने में वह अपने दोस्तों के बारे में चिंतित होकर मोबाइल उठाते ही स्क्रीन पर गिरगिट आकर उससे कहता है "तो ब्रेकिंग न्यूज़ यह है कि सुकेतजी शम्स मियाँ बस सीढीयों से ज़रा फिसल गए हैं..अब इतनी भी नहीं पीनी चाहिए..खैर, ज़्यादा फ़िक्र की ज़रूरत नहीं, टूट-फूट हुई है लेकिन अनमैनेजिबिल नहीं है...रघु रूबेन के कार डिवाईडर से टकराई..नथिंग मच टू वरी बस पसली क्रेक हुई...एनिथिंग एल्स...मि.सुकेत?"[13] वर्तमान समय के नाकोहस काल में व्यक्ति स्वयं अपने को अकेला और असहाय पाता है। उनकी विरोधी भावना और मानसिकता को मार-पीट तथा धमकी भरी चेतावनी से युक्त कई तरह के पेर्सुयेशन तकनीकों से गुज़रना पड़ता है। यहाँ लोग एक दूसरे की मदद केलिए एकजुट नहीं होते हैं। यह उपन्यास के ही एक उदाहरण से व्यक्त होता है, जहाँ भिड़े हुए समूह रूपी मगरमच्छ हाथी रूपी विरोधी स्वर को आराम से चबा चबाकर खा रहा है और उसकी चीख-चिल्लाहट तो जनता के बहरे कानों पर जा रहा है।

मानवीय अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता जनतांत्रिक देश की प्रगति का एक अनमोल तत्व है।नाकोहस काल वर्तमान समय की घुटती, दबती, पीड़ित मानवीय अभिव्यक्ति के काले युग का एक प्रतीक है। सरकार या सरकार द्वारा बने एक निगरानी समूह के संस्थापन का प्रभाव मानव को एक अस्तित्ववादी समस्या पर ला खड़ा है। यह समाज मानव की बौद्धिक क्षमता की अपेक्षा 'टेकनेक्चुअल' तकीनीकी साधनों को ज़्यादा महत्व देता है। यहाँ लोगों को तकनीकी साधनों के हवाले एक पूर्व निर्धारित सोच-विचार की रेखा में बाँधने की प्रक्रिया सहज एवं सक्रिय है। यह वास्तव में किसी दूसरों के इशारे से स्वचलित एक कर्तृत्वहीन जनता का निर्माण होगा। स्वत्वयुक्त, स्वतन्त्र विचार-विमर्श रूपी मनुष्य की अभिव्यक्ति की लहर एक स्वास्थ्य भरे समाज का निशान है।

सन्दर्भ:

1. नाकोहस, पुरुषोत्तम अग्रवाल, राजकमल प्रकाशन, 2017, पृ.:13

2. वही, पृ. 15 3. वही, पृ. 17
4. वही, पृ. 20 5. वही, पृ. 49
6. वही पृ.68 7. वही, पृ. 69
8. वही, पृ. 95 9. वही, पृ. 99
10. वही, पृ. 113 11. वही, पृ. 135
12. वही, पृ. 138 13. वही, पृ. 161

◆सहायक आचार्य,
सरस्वती कॉलेज ऑफ़ आर्ट्स एंड साइंस,
तिरुवनंतपुरम, केरल।
मो : 7736293660
ईमेल - sk447571@gmail.com

'काला पादरी' उपन्यास का वैशिष्ट्य

◆ **जीत कौर**

सार : समाज में बहुत से मानव समुदाय रहते हैं, जिनमें से कुछ शहरी सभ्यता में रहकर आधुनिक तौर तरीकों से जीवन यापन कर रहे हैं और कुछ समुदाय ऐसे हैं, जो आज भी पहाड़ों पर शरण लेकर नारकीय जीवन जी रहे हैं, जिन्हें आदिवासी कहा जाता है। 'आदिवासी' शब्द दो शब्दों -'आदि' और 'वासी' - के योग से बना है। आदि का अर्थ है–'मूल' अथवा 'पहला' तथा वासी का अर्थ है– 'रहने वाला' अर्थात 'निवासी'। इस प्रकार 'आदिवासी' शब्द से तात्पर्य है, किसी देश या प्रांत के वे निवासी जो बहुत पहले से वहाँ रहते आए हों और

वहाँ के मूल निवासी हों। ये आदिवासी बहुत पहले से निर्जन एवं दूरस्थ क्षेत्रों में निवास कर रहे हैं और विकास के साधनों से दूर रहने के कारण इनका जीवन विकसित नहीं हो पाया है, जिसके कारण यह समुदाय जटिलताओं एवं अभावों में जकड़ता गया।साहित्य की विभिन्न विधाओं के माध्यम से लेखकों ने आदिवासी समाज के जीवन, रहन–सहन,समाज एवं संस्कृति को उजागर करने का प्रयास किया है।

मूल शब्द : आदिवासी, सरगुजा, विश्रामगृह, बैंक प्रशासन, राजनीति, बपतिस्मा, प्रभु यीशु, जुगाली, बेगार,धर्मांतरण,बिजली,बैगा, अकाल, भूख, गरीबी,अंधविश्वास, शोषण आदि।

प्रस्तावना : 'काला पादरी' उपन्यास तेजिंदर का एक बहुचर्चित उपन्यास है। इसके केन्द्र में सरगुजा का दुर्गम क्षेत्र है, जहाँ बसे आदिवासी त्रासदीय जीवन जीने पर विवश हैं। आदिवासी समाज भारत के विभिन्न क्षत्रों में विभिन्न रूपों के अभावपूर्ण एवं त्रासदीय जीवन जी रहे हैं। ये आदिवासी देश के मूल एवं प्राचीनतम निवासी हैं, जो प्रारम्भ से ही दूरस्थ एवं निर्जन स्थानों पर निवास करते रहे हैं। शहरी सभ्यता एवं विकास के साधनों से दूर रहने के कारण इनका जीवन अभावपूर्ण एवं मुख्यधारा से कटकर रह गया है, जिसके परिणामस्वरुप इनका जीवन दिन-प्रतिदिन समस्याओं एवं कष्टों का घेरा बनकर रह गया है। 'काला पादरी' में लेखक ने अम्बिकापुर क्षेत्र के सरगुजा अंचल में बसे आदिवासियों के विभिन्न जीवन पहलुओं, परिस्थितियों और भावनाओं की जीवंतता को प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त लेखक ने कुछ सरकारी कार्यालयों तथा साधनों का चित्रण भी इस उपन्यास में प्रस्तुत किया है, जिसका वर्णन इस प्रकार है–

लेखक ने छत्तीसगढ़ के अंबिकापुर क्षेत्र के सरगुजा अंचल में बैंक प्रशासन की व्यवस्था का यथार्थ चित्रण करते हुए वहाँ के कर्मचारियों की भ्रष्ट नीतियों का परदाफाश किया है, जो अपने पद का लाभ उठाते हुए वहाँ के आदिवासी किसानों और मज़दूरों का शोषण करते हैं। बैंक की ज़िम्मेदारी होती है कि वह वहाँ के आदिवासी किसानों को हर तरह का ऋण देकर उनकी सहयता करे, परन्तु जब कोई किसान बैंक से ऋण लेना चाहता है तो बैंक प्रशासन उसको दस्तावेज़ों में उलझाए रखता है। जैसे-तैसे आदिवासी किसान इन दस्तावेज़ों को एकत्र कर लेता है तो अंत में बैंक कर्मचारी द्वारा पूछा जानेवाला प्रश्न आदिवासी किसान को आहत करता है, जिसका उदाहरण देते हुए लेखक कहता है कि, "चलिए, किसी तरह नो- डयूज़ सर्टिफिकेट आपने इकट्ठा कर लिये और जब सब कागज तैयार हो गये तो फिर सवाल आया पहचान का। पहचान, यानि कि आईडेनटीफिकेशन।"[1] जिनकी पहचान अपने आप में एक चिंता का विषय है, उनसे यह प्रश्न पूछना उन्हें पीड़ित एवं शोषित करने के सिवाय और कुछ नहीं है।

इस अंचल में राजनैतिक मंत्रियों का आदिवासियों पर और वहाँ की प्रत्येक व्यवस्था प्रणाली पर उनकी धाक का चित्रण लेखक ने उपन्यास में स्पष्ट रुप से प्रस्तुत किया है। राय साहब स्वयं को इस अंचल का राजा मानते हैं, इस पूरे क्षेत्र पर दृष्टि गाड़े रखते हैं। बैंक के कार्यों में भी उसकी दृष्टि बाज की तरह बनी रहती है कि कहीं बैंकवाले उन लोगों पर पैसा बरबाद तो नहीं कर रहे हैं, जो उनकी पार्टी के साथ नहीं हैं। इस बात को आदिवासी ईसाई पादरी जैम्स खाखा बैंक कर्मचारी आदित्य से कहता है कि, "तुम राय साहब की एक तस्वीर अपने बैंक में क्यों नहीं लगा देते? कम से कम गाँधी की फोटो लगाने के पाखंड से तो बच जाओगे।"[2] एक आदिवासी ईसाई द्वारा इस तरह की व्यंग्यात्मक बात कहना वहाँ के बैंक प्रशासन की पाखंड व्यवस्था को ही दर्शाना है।यहाँ की राजनीति का एक और मुखौटा हमारे समक्ष प्रस्तुत होता है, जब सत्ताधारी भाषण देते हुए अपने कार्यों की प्रशंसा करते हैं और अपनी वास्तविकता भूल जाते हैं। अख़बार में राज्य के मुख्यमंत्री आदिवासियों की संस्कृति के गर्व की बात करते हुए उनके विश्वास की

बात करते हैं तो जेम्स खाका राजनीतिक व्यवस्था पर कटाक्ष करते हुए कहते हैं-" जेम्स ने अखबार वापस मेज़ पर रख दिया और हँसते हुए कहा, "दीदी देखो इन पोलिटिशियंस को इन्हें अपनी आदिवासियों की संस्कृति पर गर्व होता है, जबकि इन्हें शर्म आनी चाहिए कि वे आज भी नंगे रहते हैं।"[3]

आदिवासी समाज में धर्मांतरण की प्रक्रिया इनके अस्तित्व पर सबसे बड़ा संकट है। किस प्रकार जब आदिवासी लोग आर्थिक विपन्नता से जूझकर अपने लिए अन्न की व्यवस्था में स्वयं को असमर्थ पाते हैं और भूख के कारण अंतिम साँस लेते हैं तो धर्म के ठेकेदार उनकी विवशता का लाभ उठाते हुए उन्हें धर्मांतरण के लिए विवश करते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में भी इस समस्या का चित्रण देखने को मिलता है कि किस प्रकार ईसाई मिशनरी आदिवासियों की विवशता का लाभ उठाते हुए उनका धर्म-परिवर्तन करवाकर उन्हें ईसाई बनाते हैं और दूसरी तरफ हिन्दू संगठन अपना दबाव डालते हुए आदिवासी ईसाइयों को हिन्दू बनाने की नीति बनाते हैं। इन दोनों स्थितियों में आदिवासी समाज जकड़ा हुआ है। ईसाई मिशनरी आदिवासियों को उनकी आवश्यकताओं को पूरा करने की लालसा देकर उन्हें ईसाई बना देते हैं और प्रभु ईशु की कृपा बताकर आजीवन उन्हें अपना गुलाम बनाकर रखते हैं।जेम्स खाखा और आदित्य जब फादर मैथ्यूज़ से मिलते हैं तो आदित्य फादर से प्रश्न करता है कि आप इनका धर्म कैसे परिवर्तित करते हैं, तो फादर उत्तर में आदित्य से कहता है कि, "न... न... यही तो ग़लतफ़हमी है कि हम ने उनको ईसाई बनाया, यह तो प्रभु की इच्छा से हुआ, राजा इन सब से बेगार कराता था, राजा का जो देवी लोग था, वह भी राजा बेटा का साथ देता था, खाखा बेटा का नहीं .... प्रभु ने इनको दूध दिया, खाना दिया, कपड़ा दिया, तो प्रभु का शुक्राना तो इनको देना था न, वह ये लोग दिया, हम इनका बपतिस्मा किया, ये प्रभु का इच्छा था।"[4]

फादर मैथ्यूज़ द्वारा आदिवासियों के अतीत को कुरेदना जेम्स खाखा को उद्विग्न करता है, क्योंकि आदिवासी से ईसाई पादरी बनने के बाद भी इन्हें वह स्थान नहीं मिल सका था, जिसका वे अधिकारी होते हैं। ईसाइयों का दबाव सदैव उन पर बना रहता है और हमेशा उनके अतीत को याद करके उन्हें यह एहसास दिलाया जाता है कि हमने आप पर कृपा की है जो कि जेम्स को बिल्कुल नहीं भाता और आवेश में आकर अपने मित्र आदित्य से कहता है, "हम लोग जब पढ़-लिख गये हैं, प्रार्थना का काम करते हैं, पूरी चर्च सम्भालते हैं, तो वे बार-बार हमारी बेगार के दिनों की जुगाली क्यों करते हैं?।"[5] इसी कारण शायद उसे आदिवासियों द्वारा ईसाई धर्म अपनाना न खुश बनाना था। फादर की बातें सुनकर आवेश में आकर वह कह देता है कि, "क्या ये सच नहीं कि हमारी इमेजेज़ में पहाड़ थे, नदियां थीं, पेड़ थे, चीते थे, और राजा ने हमें बंधुआ बना दिया, फिज़िकली और इक्नामिकली एक्सप्लायट किया, लेकिन आपने क्या किया? यू रादर टेम्ड अस, आपने हमें पालतू बना दिया, हमारे लिए हिंदू फंडामेंडलिस्टों और आपमें अब कोई खास फर्क नहीं है। हमारी सारी इमेजेज़ छीन लीं आप लोगों ने।"[6]

धर्म-परिवर्तन के पश्चात भी समाज उनकी पहचान को स्वीकार नहीं पाता, बल्कि धर्मांतरित आदिवासी के रुप में ही देखता है। आदिवासी से ईसाई बनने के बाद भी उन्हें उपेक्षित एवं हीन भावना से देखा जाता है। इस दुखद पीड़ा का वर्णन उपन्यास की एक पात्र-जेम्स खाखा की बहन अनास्तसिया के शब्दों में स्पष्ट देखने को मिलता है।जब वह घर आए आदित्य से कहती है– "देखो इस तरह 'पापुलिस्ट' बातें करना बहुत आसान होता है, लेकिन इन ए रीयल सैंस तुम बताओं कि अपने से बाहर की सोसाइटी में कौन हमें एक्सेप्ट करता है, इस देश के बड़े शहरों की जो सोसाइटी हैउनमें आज भी हम सिर्फ आदिवासी हैं, कन्वर्टेड हैं, उनका हमारी ओर देखने का ढंग एक

तरफ से जंगलियों की तरफ देखने का ढंग है।" [7] ईसाई बनने के उपरांत भी उन्हें जाहिल ही समझा जाता है और उनकी मृत्यु के बाद भी उनकी समाधि एक ईसाई की समाधि की तरह नहीं दिखाई पड़ती, जिसका उदाहरण यह पंक्ति है- "पता नहीं कितने टोप्पो, मिंज, तिग्गा, लकड़ा, और खाखा थे जो बेगार की मज़दूरी करते करते अचानक बेगार की प्रार्थना में शामिल हो गये थे और फिर मर गये थे, जैसे कि उन्हें मरना था, जैसे कि हर कोई मरता है। पर वे ज्यों अपने ही गांव की ज़मीन में फिर से बो दिये गये थे। इनकी क़ब्रों पर न तो फूल थे और न ही संगमरमर की पटिटकाओं पर अंग्रेजी में कुछ लिखा था: 'इन द लविंग मेमोरी ऑफ़.....'।"[8]

आर्थिक अभाव के कारण सरगुजा के आदिवासियों का भयावह चित्रण लेखक ने प्रस्तुत उपन्यास में किया है।अर्थ की कमी होने के कारण ही ये लोग शिक्षा से दूर तो होते ही हैं, साथ ही और भी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, जिनमें से भूख भी एक मुख्य कठिनाई है जो आदिवासियों की साँसें छीन लेती है।भूख के कारण व्यक्ति किस प्रकार धीरे-धीरे मौत की ओर जाता है, इसका उदाहरण उपन्यास में जेम्स खाखा की ये पंक्तियाँ हैं– " तुम जानते हो भूख से आदमी की मौत किस तरह होती है?"स्वयं इस प्रश्न का उतर देते हुए वह पुन: कहता है- "पहले दिन जब चावल का दाना मुँह में नहीं जाता तो लगता है कि जैसे कुछ गुम हो गया है, पर उम्मीद रहती है कि कल तक मिल जायेगा, अगले दिन भी जब चावल का दाना नहीं मिलता तो आस खत्म होने लगती है, पर लगता है कि चलो एक दिन और, पर तीसरे दिन के बाद सोचना पड़ता है कि चावल का स्वाद मुँह में घुलेगा भी या नहीं, आदमी उसकी गंध तक भूल जाता है ,..... पहले देह की शक्कर सूखती है, फिर नमक, फिर पानी, फिर खून का बहना और आखिर आपकी साँस रुकने लगती है।"[9]

आर्थिक अभाव के कारण इस क्षेत्र के लोगों को गरीबी से भी जूझना पड़ता है। गरीबी के कारण ये लोग अपने बच्चों को हर तरह की सुविधा देने में असमर्थ हैं। वह अपने बच्चों की इच्छाएँ तो दूर, उनकी ज़रूरतें भी पूर्ण नहीं कर पाते हैं। छोटे-छोटे बच्चों को भूख का सामना करना पड़ता है। पेट भर खाना न मिलने के कारण ये बच्चे अपनी उम्र से अधिक छोटे जान पड़ते हैं। छोटे और बड़े बच्चों के बीच उम्र का कोई फ़र्क नहीं जान पड़ता- "बाईस-तेईस साल की लड़की और चार-पाँच साल की बच्ची के बीच उनका चेहरा देखकर उम्र का भेद कर पाना बहुत मुश्किल है। यह अजीब है।" [10]किशोर बालाओं के तन पर फटा-पुराना कपड़ा दिखाई देता है, परन्तु छोटे बच्चे और बच्चियों को तो कपड़ा क्या होता है इसका शायद पता ही नहीं है।

सरगुजा के इस क्षेत्र में जहाँ लोग भूख के कारण बिलख रहे हैं तो सामान्य सी बात है कि शिक्षा से दूर-दूर तक इनका नाता भी नहीं होगा, जिसके कारण यहाँ के लोग अंधविश्वास के अंधेरे और अज्ञानता के दलदल में डूबे हैं।अंधविश्वास इतना फैला हुआ है कि लोग भूखमरी का शिकार हो रहे हैं और उन्हें रोटी देने के बजाय बैगा के पास लिया जा रहा है। बैगा उस भूखे व्यक्ति के भीतर प्रेतात्मा का वास बताकर उसे झाड़- फूँक तथा प्रेतात्मा को भगाने के कई प्रयास कर रहा है।जेम्स खाखा दूर से इस दृश्य को देखकर कहता है, "इस आदमी को देवता नहीं, चावल बचा सकते हैं।"[11]बैगा प्रेत को भगाने के निरंतर प्रयास करता है, परन्तु असफल हो जाता है और व्यक्ति अपने प्राण त्याग देता है।अकाल पड़ने पर जब चारों तरफ सूखा पड़ जाता है और लोग निरंतर भूख से मरते हुए दिखाई देते हैं तो जेम्स खाखा ईश्वर से प्रार्थना करता है, "ए ईश्वर ! परम पिता परमेश्वर ! मैं सच्चे दिल से प्रार्थना करता हूँ कि इस साल हमारे गांव में हाथी फिर भेजना और हाथियों को आशिर्वर्चन देना ईश्वर कि वे हमारे झोंपड़े तहस- नहस करने हमारे घर पर अवश्य आयें।"[12] लोग ईश्वर से हमेशा अपने घर बने रहने की कामना करते हैं, परन्तु यहाँ स्थिति विपरीत

दिखाई जान पड़ती है। वह ईश्वर से यह प्रार्थना इसलिए करता है कि हाथियों द्वारा उनके झोंपड़े नष्ट होने पर सरकार द्वारा वहाँ के लोगों को कुछ पैसे दिए जाए और वे अकाल के इस घातक समय से खुद को बचा पायें।

आदिवासी पादरी जेम्स खाखा जब अपने चारों ओर लोगों को भूख से मरते देखता है तो वह लोगों की सहायता करना चाहता है, उन्हें इस कठिन परिस्थिति से बचाना चाहता है। उनकी सहायता करके वह अपना कर्तव्य पूरा करना चाहता है, इसलिए वह बार-बार चर्च के मुख्य पादरी बिशपस्वामी से लोगों को इस स्थिति से बचाने की गुहार करता है। उनसे लगातार प्रार्थना करता है कि वह इस मुश्किल परस्थिति से उसके आदिवासी भाई-बन्धु को बचाने में उसकी सहायता करें, परन्तु बिश्पस्वामी उसकी प्रार्थना स्वीकार नहीं करते और साफ-साफ कहते हैं- "हमारी भूमिका उन लोगों के साथ जुड़ी है जिनके हाथ हमारे धर्म का प्रचार जुड़ा है।"[13] जेम्स खाखा अंदर से टूट जाता है। वह बिशपस्वामी के इस चेहरे से आज तक अनभिज्ञ था, जो शायद इस मुश्किल समय के कारण ही देख पाया।

अशिक्षा व अज्ञानता के कारण यहाँ के आदिवासी लोग अपने किसी दस्तावेज़ को भरने में भी असमर्थ हैं। अपनी ज़मीन में डीज़ल-पंप खोलने के लिए आदिवासी किसान बैंक से ऋण लेता है, जहाँ वह केवल हस्ताक्षर के स्थान पर अँगूठा लगाता है और बाकी की सारी जानकारी ग्रामसेवक लिखता है। अशिक्षित होने के कारण वह हिसाब-किताब करने में भी असमर्थ होता है। इसका लाभ अन्य व्यक्ति लेते हैं, जिसका उदाहरण उपन्यास की ये पंक्तियाँ हैं, "ईट के भट्ठे वाले से लेन–देन का हिसाब तय करने के बाद व्यापारी सत्रह हजार चार सौ आठ रुपये की जगह चौबीस हजार आठ सौ नब्बे रुपये का बिल तैयार करता है और सात हजार चार सौ बयासी रुपये का बंटवारा हो जाता है।"[14] लोग शिक्षित होकर भी अशिक्षितों से इस तरह का व्यहवार कर रहे है।

आज के वर्तमान समय में लगभग प्रत्येक क्षेत्र विकास की ओर बढ़ रहा है। यांत्रिकता ने हर जगह अपना पैर पसार रखा है। परंतु अम्बिकापुर क्षेत्र के लोगों का जीवन अभी भी जंगलों के भीतर सिमटा हुआ है, जहाँ न कोई यंत्र और न ही कोई यांत्रिक सुविधा पहुँच पायी है। बिजली का खंभा कई वर्षों से रोशनी की प्रतीक्षा कर रहा था, जिसको यहाँ के लोग निरंतर देखा करते है और एक दिन यहाँ भी बिजली आयेगी और यह क्षेत्र भी प्रकाश से भर जयेगा, इसी आशा में खंभे की ताकतें रहते हैं परन्तु ऐसा होता नहीं है, जिसका उदाहरण इस प्रकार है, "स्कूल के सामने बिजली का खंभा था, जिसमें बिजली नहीं थी। सिर्फ खंभा था। कहते हैं कि बिजली का यह खंभा क़रीब दस साल पहले ठेकेदार द्वारा यहाँ लगवा गया था। तब से यह यों ही अकेला खड़ा है रोशनी के इंतजार में।" [15]

निष्कर्ष : अत: यह कहा जा सकता है कि तेजिंदर द्वारा लिखा गया 'काला पादरी' उपन्यास अंबिकापुर क्षेत्र के सरगुजा अंचल में बसे आदिवासी उराव जनजाति की पीड़ा, दुख, उनका रहन-सहन एवं परस्थितियों का यथार्थ है, जिसे लेखक ने बहुत ही मार्मिकता से चित्रित किया है।इसके अतिरिक्त ईसाई मिशनरियों का सरगुजा के आदिवासियों की विवशताओं का लाभ उठाते हुए उनको ईसाई बनाने की नीति एवं इसके उपरांत उन्हें कुछ सुविधा देकर पूरी उमर अपने अनुशासन में दबाये रखने की दारुण कथा तथा कुछ सरकारी कर्मचारियों एवं राजनैतिक सदस्यों की भ्रष्टता का दस्तावेज़ प्रस्तुत उपन्यास है। अभावग्रस्त आदिवासियों को किस तरह से ईसाई मिशनरियों और पद प्रतिष्ठित लोगों द्वारा दबाया जाता है इसका स्पष्ट चित्रण 'काला पादरी' में देखा जाता है।

संदर्भ ग्रन्थ:

1. तेजिंदेर, काला पादरी, सहित्य भण्डार प्रकाशन; इलाहाबाद; संस्करण- 2016,पृ. 20
2. वही, पृ. 23
3. वही, पृ.119
4. वही, पृ. 56
5. वही, पृ. 58

6. वही, पृ. 57 7. वही, पृ. 121
8. वही, पृ. 67 9. वही, पृ. 35 , 36
10. वही, पृ. 64 11.वही, पृ. 87
12. वही, पृ. 62 13.वही, पृ. 142
14. वही, पृ. 20 15.वही, पृ.68

◆शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय,
हज़रतबल,श्रीनगर
sukhjeet03031994@gmail.com
मो.9682615020

नयी कविता : स्वरूप और दृष्टि

◆ **अमित कुमार**

नयी कविता का उद्भव तत्युगीन परिस्थितियों के प्रभाव और पूर्ववर्ती काव्यधाराओं के विकास और प्रतिक्रिया के सम्मिलित प्रभाव में हुआ। सम्भवतः हर काव्यधारा अपने कथ्य और शिल्प में नवीनता के साथ साहित्य के इतिहास में उपस्थिति दर्ज कराती है। इसलिए 'आधुनिक हिन्दी कविता' में नयापन के आगाज से शुरू होनेवाली काव्यधारा 'नयी कविता' के विशेषण में देखी गयी और कमोबेश सम्बोधित भी की गयी। आचार्य शुक्लजी ने भी छायावाद से भिन्न एक धारा की कविता को 'नयी कविता' कहा। कहना न होगा कि हर काव्यधारा का मिजाज पिछली काव्यधारा से अलग है। किन्तु एक संज्ञा के रूप में 'नयी कविता' पदबंध का प्रयोग केवल भारतीय स्वाधीनता के ठीक बाद की कविता के लिए ही किया जाता है।

नामकरण और कालावधि

'साहित्य का इतिहास' और अन्य 'इतिहास' में फर्क यह है कि 'इतिहास' घटना को कालखंड की विभाजन रेखा मानता है, उसके लिए घटनाएँ प्रधान अर्थ रखती हैं, किन्तु साहित्य के इतिहास में केवल घटना मायने नहीं रखती, बल्कि उसके लिए संवेदना और मूल्यों में बदलाव भी मायने रखता है। कहना न होगा कि संवेदना और मूल्यों में बदलाव की प्रकिया धीमी होती है। इसलिए नयी कविता और नयी कहानी की प्रवृत्तियाँ भारतीय स्वाधनीता के लगभग चार साल बाद से शुरू होती हैं। कोई भी काव्य प्रवृत्ति अपनी यात्रा तय करती और अपने मुकाम पर पहुँचने के बाद उसका ऐश्वर्य क्षीण होने लगता है। एक समय के बाद वह बदलते समय के यथार्थ को पकड़ने में असमर्थ जान पड़ता है। प्रयोगवाद ने कविता में शिल्प को लेकर जो प्रयोगशीलता अपनायी उससे हिन्दी काव्य समृद्ध तो हुआ, पर एक समय के बाद वह अपने ही अतिवाद में उलझ गयी और फिर 'हिन्दी काव्य के इतिहास' में नये यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए 'नयी कविता' का उद्भव हुआ। नयी कविता को प्रयोगवादी कविता से अलगाने का पहला प्रयास अज्ञेय ने किया। एक परिसंवाद में अज्ञेय ने 'प्रयोगवाद' को अपूर्ण मानते हुए कहा – "मैं आग्रहपूर्वक यह कहना चाहता हूँ कि नयी कविता की, जिसके लिए मुझे 'प्रयोगवाद' शब्द अपूर्ण, अव्याप्त और पूर्वाग्रहमुक्त जान पड़ता है- मूल प्रवृत्तियाँ इस देश की ही हैं।"[1] इसके बाद 'दूसरा सप्तक' की भूमिका में भी अज्ञेय 'नयी कविता' को प्रयोगवाद से अलगाने की कोशिश करते हैं।

'दूसरा सप्तक' के अधिकांश कवि अपने वक्तव्य में नये परिवेश के साथ नये कथ्य तथा शिल्प के नयेपन को रेखांकित करते हैं। असल में "सन् 1950 के आस-पास प्रयोगवाद तिरस्कृत हो चुका था और प्रगतिशील और प्रयोगशील काव्यधारा के सार्थक और जीवंत तत्वों को आत्मसात करती हुई जो नयी रचनाशीलता विकसित हुई, उसका सार्थक स्वरूप हमें 'दूसरा सप्तक' में देखने को मिलता है।"[2] हालाँकि 'दूसरा सप्तक' में जिन कवियों की कविताएँ संकलित हैं, वे कवि 1950 के पहले से ही रचना कर रहे थे, किन्तु 'दूसरा सप्तक' के प्रकाशन (1951) के साथ नयी कविता के कवियों की कविताएँ और वक्तव्य प्रकाशित होकर आये हैं, जिसमें इन कवियों ने नवीन कविता को 'नयी कविता' कहा। इसलिए 'दूसरा सप्तक' के प्रकाशन वर्ष से 'नयी कविता' की शुरुआत मानी जा सकती है। नेहरू की मृत्यु के साथ एक युग और एक मूल्य की समाप्ति होती है। अत: यह तर्कसंगत होगा कि नयी कविता की सीमा 1951 से1964 को मानी जाये।

किसी भी काव्यधारा के स्वरूप और उसकी प्रवृत्तियों को समझने के लिए ऐतिहासिक सन्दर्भों की पड़ताल ज़रूरी है। हर दौर की रचना अपने समय-काल की परिस्थितियों से गहरे रूप से प्रभावित होती है । साहित्य के संदर्भ को समझने के लिए साहित्यिक पृष्ठभूमि के साथ-साथ सामाजिक-राजनीतिक पृष्ठभूमि की पड़ताल भी ज़रूरी है, जिससे उस युग की सामूहिक कृति में परम्परा और प्रयोग की रचनाशीलता के साथ उस दौर के साहित्य में मौजूद सामाजिक-राजनीतिक प्रभावशीलता की पहचान हो सके।

तत्युगीन परिस्थियाँ, परम्परा का प्रभाव और पूर्ववर्ती काव्यधारा की प्रतिक्रिया के बीच से काव्य प्रवृतियों का उद्भव होता है। काव्यधारा अपने समय के यथार्थ के अनुरूप परम्परा के हिस्से का चयन करती है। किसी भी काव्यधारा के विकास में एक साथ कई कारक अपनी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष भूमिकाओं से उसे मज़बूती प्रदान करते हैं। नयी कविता के सन्दर्भ में यह बात सबसे सटीक बैठती है। नयी कविता के कवि पिछली काव्यधाराओं की शक्ति और सीमाओं को विवेकपूर्ण ढंग से देखते हैं, इसलिए उनके यहाँ पूर्व काव्यधाराओं का विकास भी है और उनकी सीमाओं से बचाव भी। नयी कविता ने न केवल काव्य को फिर से सामाजिकता की भूमि पर प्रतिष्ठित किया, बल्कि काव्य कला और काव्यालोचना के स्तर पर भी उसे समृद्ध किया।

नयी काव्यधारा को पिछली काव्यधारा से अलगानेवाली मुख्य दो घटनाएँ हैं, जो इस काव्यधारा के समय-काल को विभाजित करती हैं, वे हैं- भारत की स्वाधीनता और द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद का समय। नयी कविता मुख्य रूप से इन दो घटनाओं के बाद की कविता है। स्वतंत्र भारत का जनमानस जिन आशाओं और उम्मीदों को लेकर चल रहा था उसके टूटने से उसमें मोहभंग और अनास्था पैदा हुई जिसका प्रभाव नयी कविता पर भी दिखायी देता है।

नयी कविता : स्वरूप और दृष्टि

नयी कविता में मुख्य तौर पर दो उपकाव्यधाराएँ दिखाई पड़ती हैं। एक का प्रतिनिधित्व मुक्तिबोध करते हैं तो दूसरी का अज्ञेय। नयी कविता की ये दो धाराएँ दो अलग-अलग कला-दृष्टि का प्रतिनिधित्व करती हैं। कलावादी दृष्टि के प्रतिनिधि 'कला की दुनिया' को स्वायत्त दुनिया मानते हैं। कलावाद की यह दृष्टि व्यक्तिवादी विचारधारा से पोषित होती है। वहीं मुक्तिबोध कला को समाज से गहरे रूप से सम्बद्ध मानते हैं। वे कला का उद्देश्य समाज के लिए और समाज के हित में मानते हैं।

नयी कविता के कुछ ऐसे भी कवि हैं, जिनकी रचनाओं में व्यक्तिवाद और सामाजिकता का द्वंद्व दिखायी देता है। उन कवियों में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, रघुवीर सहाय, केदारनाथ सिंह और दुष्यंत कुमार आदि प्रमुख हैं। काव्य रचना के

आरम्भ में ये कवि व्यक्तिवाद से ज़्यादा प्रभावित रहे, पर बाद में इन्होंने रचना को अधिक यथार्थोन्मुखी और समाजोन्मुखी बनाने का प्रयास किया।

नयी कविता का मुख्य ज़ोर आधुनिक भाव-बोध पर है। आधुनिक भावबोध के मूल्य को नयी कविता के कलावादी कवि आलोचक और प्रगतिशील कवियों ने भी स्वीकार किया है। किन्तु दोनों के लिए आधुनिक भावबोध के मायने अलग-अलग हैं।आधुनिकता में रोमानी दृष्टिकोण का विरोध प्रगतिशील और कलावादी दोनों धाराओं में है। फर्क बस पक्षधरता को लेकर है। जहाँ प्रगतिशील धारा के कवि के लिए आधुनिक भावबोध अपने समय और समाज के यथार्थ को अभिव्यक्त करने की दृष्टि है, वहीं कलावादी काव्यधारा की दृष्टि से आधुनिक भावबोध का मतलब है- मानव स्वाभिमान और व्यक्ति की स्वतन्त्रता को प्रतिष्ठित करना। कहना न होगा कि ये दो दृष्टिकोण दो अलग-अलग विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व करते हैं।

परिवेश के साथ मनुष्य का द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध है। मनुष्य अपने परिवेश से गहरे स्तर पर प्रभावित भी होता है और अपने परिवेश को भी प्रभावित करता है। नये परिवेश में नया मनुष्य नये सम्बन्धों को जीता है। ऐसे में नये परिवेश में नये सम्बन्धों का असर उसके भावों और विचारों पर भी पड़ता है, जिसकी अभिव्यक्ति कविता में होती है। नये परिवेश का कवि अपने परिवेश के प्रति सजग दिखाई देता है।रघुवीर सहाय कवि के सामाजिक यथार्थ के प्रति जागरूकता को कवि के लिए ज़रूरी मानते हुए लिखते हैं: "कोशिश तो यही रही है कि सामाजिक यथार्थ के प्रति अधिक से अधिक जागरूक रहा जाये और वैज्ञानिक तरीके से समाज को समझा जाये। वास्तविकताओं की ओर ऐसा ही दृष्टिकोण रखना चाहिए और यही जीवन को स्वस्थ बनाये रख सकता है।"[3]

अज्ञेय के अनुसार 'नयी कविता' की विशेषता है- 'मानव और मानव जाति का नया सम्बन्ध'। समाज में परिवर्तन के साथ सामाजिक सम्बन्धों में भी परिवर्तन होता है। मानव और मानव जाति का यह नया सम्बन्ध सामाजिक सम्बन्धों पर ही टिका हुआ है। इसलिए 'नयी कविता' में मानवीय सम्बन्धों का सूक्ष्म अंकन हुआ है।

'नयी कविता' पर विचार करते हुए आम तौर पर शीत युद्ध के प्रभाव को नज़र अंदाज़ किया जाता है, जबकि द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद उभरी दो महाशक्तियों का प्रभाव और प्रतिक्रिया विश्व के अनेक देशों पर दिखाई देता है। असल में दो महाशक्तियों के रूप में उभरे रूस और अमेरिका दो अलग-अलग मूल्य दृष्टि और कला चेतना का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। एक तरफ रूस साम्यवादी विचारधारा के माध्यम से 'कला समाज के लिए', इस कला दृष्टि को प्रसारित कर रहा था, तो दूसरी तरफ अमेरिका साम्राज्यवादी- पूँजीवादी विचारधारा के माध्यम से 'कला कला के लिए' की कला दृष्टि को प्रसारित कर रहा था।नयी कविता इस शीत युद्ध से गहरे स्तर पर प्रभावित दिखायी देती है।

'नयी कविता' के कवियों ने युद्ध सम्बंधित कविताएँ भी लिखी हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध में भारत जैसे देश भले ही प्रत्यक्ष रूप से शामिल न रहे हों, किन्तु विश्व युद्ध के बाद के संकट ने विश्व के हर देश को झकझोरा। सन् 1952 के बाद बहुत सारे हिन्दी कवियों ने युद्ध से प्रभावित कविताएँ लिखी हैं। इन कविताओं में युद्ध के बाद का विध्वंस - पुराने मूल्य, पुरानी मान्यताएँ और पुरानी नैतिकाएँ नष्ट होना- दिखाई देता है।

नयी कविता स्वाधीन भारत की पृष्ठभूमि पर उदित होती आधुनिक हिन्दी कविता की पहली काव्यधारा है। इसलिए इस दौर की कविताओं पर आज़ादी की उम्मीदों के टूटने से जुड़े मोहभंग की अभिव्यक्ति भी दिखाई पड़ती है। इस मोहभंग में

मज़बूरी-लाचारी और असमर्थता के स्वरों का कोलाज भी शामिल है: 'है छिपी इन मुट्ठियों के बीच में/मजबूरियाँ- लाचारियाँ- असमर्थताएँ'।

साहित्य और विचारधारा का एक-दूसरे से गहरा सम्बन्ध है। विचारधारा साहित्य को एक दृष्टि प्रदान करती है। किन्तु साहित्य को केवल विचारधारा गतिशील नहीं बनाती। उसके लिए साहित्य का रचनात्मक होना भी ज़रूरी है। इसके साथ ही साहित्य में विचारधारा का संतुलन जरूरी है।साहित्य और विचारधारा का सम्बन्ध किस तरह होना चाहिए, नयी कविता इसका बेहतरीन उदाहरण है। नयी कविता में एक साथ कई विचारधाराओं के कवि काव्य-रचना करते हैं। इस काव्यधारा में मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद, गांधीवाद, लोहियावाद, समाजवाद आदि विचारधाराओं का प्रभाव देखने को मिलता है। आधुनिक हिन्दी कविता के इतिहास में पहली बार संवेदना, शिल्प और विचारधारा को लेकर बहुरूपता और विविधता देखने को मिलती है। नयी कविता की इस विशिष्टता पर बात करते हुए मुक्तिबोध लिखते हैं- "उसके भीतर अनेक शैलियाँ, अनेक भाव-धाराएँ और अनेक वैचारिक दृष्टियाँ काम कर रही हैं। प्राकृतिक सौन्दर्य और स्नेह-भावना से लेकर तो सभ्यता-समीक्षा तक, जो-जो भाव-श्रेणियाँ सम्भव हो सकती हैं वे सब उसमें हैं। गीत और छन्दोबद्ध कविता से लेकर पद्याभास गद्य तक उसमें सम्मिलित हैं।"

'नयी कविता' में विचारधाराओं की बहुरूपता के बावजूद इसमें मुख्य रूप से दो विचारधाराओं का प्रभाव देखने को मिलता है। इस काव्यधारा में एक धारा व्यक्तिवादी विचारधारा की है, तो दूसरी धारा मार्क्सवादी विचारधारा की। व्यक्तिवादी विचारधारा व्यक्ति स्वातन्त्र्य और व्यक्ति की अद्वितीयता पर बल देती है। इनकी रचना-दृष्टि के केन्द्र में व्यक्ति है। यह विचार-दृष्टि जनता को भीड़ समझती है। दूसरी तरफ मार्क्सवादी विचारधारा के केन्द्र में समाज है। नयी कविता में कई रचनाकार ऐसे भी हैं, जिनकी कोई व्यवस्थित विचारधारा नहीं है, फिर भी उनकी कविताएँ सामाजिकता से जुड़ी हुई हैं। ये कवि वैयक्तिकता को स्वीकार करने के बावजूद अपनी रचना में समाजिकता पर बल देते हैं। इन कवियों में प्रमुख हैं- सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, केदारनाथ सिंह आदि।

'नयी कविता' में प्रगतिशील और प्रयोगशील दोनों धाराएँ शामिल दिखाई देती हैं। प्रयोगशील काव्यधारा नयी कविता में काव्य की कला-चेतना को समृद्ध करती है और प्रगतिशील काव्यधारा कविता की वस्तु चेतना को। 'दूसरा सप्तक' के समय से कविता के लिए प्रगतिवादी और प्रयोगवादी मूल्य दोनों को प्रमुखता दी जा रही थी। कवि के लिए कविता के यथार्थ के साथ उसका कला पक्ष भी महत्वपूर्ण था। 'नयी कविता' की प्रगतिशील चेतना प्रगतिवादी सीमाओं का दुहराव नहीं करती, बल्कि वह उसकी यथार्थ चेतना से शक्ति ग्रहण कर 'नयी कविता' को समृद्धि प्रदान करती है। इस प्रकार पूर्ववर्ती काव्यधारा के संघर्षों ने 'नयी कविता' को संवेदना और शिल्प दोनों स्तरों पर समृद्ध किया। 'नयी कविता' में आत्मपरकता की प्रवृत्ति की प्रधानता है और इसका प्रभाव इस दौर के प्रगतिशील कवियों पर भी है। समाज में विषमता की तीव्रता से विडम्बना का जन्म होता है और विडम्बना से विसंगति का। 'नयी कविता' में सामाजिक विषमता से उपजी विडम्बना और विसंगति की गहरी अभिव्यक्ति हुई है। इन कविताओं में तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों पर व्यंग्य की अभिव्यक्ति दिखाई देती है। इसके अलावा 'नयी कविता' में भारतीय स्वाधीनता के बाद स्वप्नों और उम्मीदों के टूटने के परिणामस्वरूप उपजे मोहभंग की

अभिव्यक्ति भी व्यंग्य के रूप में दिखाई देती है।

हर कवि की अपनी विशिष्ट रचनात्मक शैली होती है, जो उसे अन्य कवियों से अलग करती है। किन्तु हर दौर का एक अपना मिजाज होता है। उसकी अपनी ऐतिहासिकता होती है, जिसका असर हर कवि पर दिखाई देता है। नयी कविता के कवियों में कला दृष्टि में भिन्नता के बावजूद उनमें आधुनिकताबोध, बौद्धिकता का आग्रह, नये मानवीय सम्बन्धों की तलाश, आत्मपरक रचना-दृष्टि और रुमानियत की प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती हैं।

संवेदना के स्तर पर 'नयी कविता' में जितनी विविधता देखने को मिलती है, शिल्प के स्तर पर भी उतनी ही विविधता दिखाई पड़ती है। 'नयी कविता' की भाषा बोलचाल के जितनी निकट है, उतनी प्रयोगवादी कविता नहीं। इस संदर्भ में विशेष तौर पर भवानी प्रसाद मिश्र और रघुवीर सहाय की कविता को देखा जा सकता है।भवानी प्रसाद मिश्र लिखते हैं- "वड्र्सवर्थ की एक बात मुझे बहुत पटी कि'कविता की भाषा यथासम्भव बोलचाल के करीब हो।' तत्कालीन हिन्दी की कविता इस खयाल से बिल्कुल दूसरे सिरे पर थी। तो मैंने जाने-अनजाने कविता की भाषा सहज रखी। ...जिस तरह हम बोलते हैं उस तरह तू लिख/ उसके बाद भी हमसे भी बड़ा तू दिख।"

नयी कविता की भाषा न केवल बोलचाल के करीब दिखाई पड़ती है, बल्कि यह लोक भाषा के करीब भी जा पहुँचती है: "पीले फूल कनेर के!/पथ अंगोरते/सिन्दूरी बदरी अँखियन के/ फूले फूले दुपेर के!!" मतलब कि नयी कविता अपनी भाषा और शिल्प में लोक से भी प्राण ग्रहण करती है, और शिष्ट से भी। नयी कविता पर बात करते हुए अज्ञेय लिखते हैं- "एक विशिष्टता है लोकगीतों या लोक प्रचलित धुनों की ओर झुकाव- यह उसकी बड़ी महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है। कारण चाहे राजनीति का जनवाद हो, चाहे अधिक आसान या गहरी प्रतिक्रिया उत्पन्न करनेवाले रूपाकारों की खोज। जहाँ से प्रयोग सफल हुए हैं, वहाँ बड़ी ही प्यारी चीजें लिखी गयी हैं- और ऐसे प्रयोग किये हैं बहुत-से कवियों ने। केदारनाथ अग्रवाल और नागार्जुन-जैसे शुद्ध जनवादियों ने, गिरिजाकुमार माथुर जैसे संस्कारियों ने। इसके साथ समवेत गायन की सम्भावनाओं की भी पड़ताल हुई है, खासकर जनवादी कवियों ने ऐसी चीज़ें लिखी हैं जो गायी जा सकती हैं- कभी समवेत कभी ग्रीक कोर्स के स्ट्रोफी और एंटीस्ट्रोफी के ढंग पर-कविता वह हो या न हो।"[4]

नयी कविता में बिम्ब और प्रतीक को लेकर भी सर्वथा नये प्रयोग देखने को मिलते हैं। जैसे-जैसे आधुनिक हिन्दी कविता पर बौद्धिकता का दबाव पड़ता गया कविता के बिम्ब और प्रतीक में भी जटिलता बढ़ती गयी। बावजूद इसके, नयी कविता ने संवेदना और शिल्प के स्तर पर नयी कविता को न केवल समृद्ध् किया बल्कि काव्यालोचना को भी एक नयी ऊँचाई प्रदान की।

संदर्भ ग्रन्थ-

1. प्रतीक, जून,1951, इलाहाबाद, संपादक- अज्ञेय, पृष्ठ संख्या-19
2. चन्द्रा सदायत, नयी कविता की काव्यानुभूति, पृष्ठ संख्या- 11, धरती प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-1990
3. रघुवीर सहाय, दूसरा सप्तक, वही, पृष्ठ संख्या- 138, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2014
4. अज्ञेय, नयी कविता,अज्ञेय रचनावली, खण्ड- 10, पृष्ठ संख्या-210, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2014

◆ शोधार्थी
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय,
नयी दिल्ली- 110067
ईमेल- amitkr36jnu@gmail.com
सम्पर्क-9063277380

'हलफनामे' उपन्यास में अभिव्यक्त किसान संदर्भित समस्याएँ

◆ धन राज

शोध सार: भारत एक कृषि प्रधान देश है। भारत की 70 प्रतिशत जनसंख्या की आजीविका का मुख्य साधन ही कृषि क्षेत्र है। भारतीय अर्थव्यवस्था में भी कृषि क्षेत्र महत्वपूर्ण स्थान रखता है। जब पूरा विश्व कोविड महामारी से त्रस्त था, तब भारत में भी स्थिति इतनी ज़्यादा अच्छी नहीं थी, परन्तु भारत सरकार द्वारा लोगों के लिए खाद्य सामग्री उपलब्ध करवाना जनकल्याण का कदम था। फिर भी कोविड के कारण अनेकों लघु उद्योग बंद हो गये, अनेकों निजी प्रतिष्ठानों ने कर्मचारियों की छंटनी की, जिससे मजदूर वर्ग को बहुत अधिक नुकसान झेलना पड़ा और वे बेरोज़गार होकर अपने मूल स्थानों या घर को लौट आये। उनके लिए तब आजीविका का सहारा बनी खेती। कृषि क्षेत्र उनके लिए वरदान सिद्ध हुआ, परन्तु इससे कृषि क्षेत्र पर अत्यधिक दबाब बढ़ा। कृषि या किसान वर्ग सभी के हित के लिए सदैव तत्पर रहता है, परन्तु आज उसी कृषि क्षेत्र व किसान को सहायता की आवश्यकता आ पड़ी है। लेकिन उनकी मदद कौन कर रहा है? अब समय आ गया है कि सरकारों को कृषि क्षेत्र व किसान वर्ग की समस्याओं पर विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है।

बीज शब्द: अर्थव्यवस्था, परिस्थितियाँ, हलफनामा, राजनैतिक, न्यायिक, आजीविका, रासायनिक, विधानमण्डल, क्रियान्वित, आर्थिक, ह्यूमस, हाइब्रिड।

मूल आलेख:

भारत के प्रथम प्रधान मंत्री जवाहरलाल नेहरु ने कहा था कि "सब कुछ इंतज़ार कर सकता है, लेकिन कृषि नहीं।"[1] यदि हम आज के समय के अनुसार देखें तो आज हम एक ताकतवर उभरती हुई अर्थव्यवस्था के रूप में विश्व में स्थापित हो रहे हैं। लेकिन हमारे कृषि क्षेत्र और किसान की स्थिति वही दिखती है, जो सन् 1950 में थी। अब सरकारों को किसानों व कृषि क्षेत्रों पर विशेष ध्यान देने की ज़रूरत है ताकि किसानों की स्थिति में सुधार हो सके एवं वे अपने परिवार के साथ सुखमय जीवन-यापन कर सकें। यदि हम अभी भी कृषि क्षेत्र पर ध्यान नही देंगे तो आगे परिस्थितियाँ और विकट होंगी और सरकारों को कोई ऐसा नियम या कानून नहीं बनाना चाहिए जिससे किसान वर्ग को लगे कि सरकार किसानों के ही विरुद्ध खड़ी है जिसका नतीजा कृषि कानूनों के विरोध को लेकर हम देख चुके हैं।

हिंदी साहित्य की परम्परा में प्रेमचन्द से लेकर अब तक के लेखक ने भी लगातार अपनी लेखनी चलाकर किसानों की विकट परिस्थितियों तथा उनकी समस्याओं से समाज व सरकारों को समय-समय पर अवगत करवाते रहे हैं। इसी परम्परा को आगे बढ़ाते हुए उपन्यासकार राजूशर्मा ने 'हलफनामे' उपन्यास की रचना की, जो कि किसानों की समस्याओं को यथार्थ रूप में चित्रित करता है। 'हलफनामे' उपन्यास में राजूशर्मा ने किसानों की विभिन्न समस्याओं की ओर हमारा ध्यान खींचा है। आगे हम उक्त उपन्यास में अभिव्यक्त किसान-समस्याओं का विस्तृत विवेचन करेंगे।

'हलफनामे' उपन्यास के नाम से हम यह अर्थ निकल सकते हैं कि इस उपन्यास में हलफनामा (Affidavit) की भूमिका महत्वपूर्ण होगी। यह सही भी है। इस उपन्यास में हलफनामे महत्वपूर्ण है और हलफनामे के साथ-साथ किसानों की अन्य

समस्याओं, यथा-आर्थिक, राजनीतिक, प्रशासनिक आदि का भी चित्रण किया गया है, जिसका किसान जीवन पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है।

किसानों की समस्याएँ हैं-

मूलभूत समस्याएँ, आर्थिक समस्याएँ, राजनैतिक समस्याएँ, प्रशासनिक समस्याएँ, शैक्षिक समस्याएँ, अन्य समस्याएँ आदि।

किसानों की समस्याएँ हैं-

मूलभूत समस्याएँ – किसानों की मूलभूत समस्याओं को हम देखें तो जैसे किसी मानव के लिये मूल आवश्यकताएँ रोटी, कपड़ा, व मकान हैं वैसे ही किसान के लिए भूमि, पानी, बीज और खाद मूल आवश्यकताएँ है। इनमें से एक की भी किसी स्थिति में कमी होती है तो वह किसान के लिए परेशानी का सबब बनती है तथा खेती में परेशानी का कारण बनती है। किसान की स्वयं की आजीविका पर भी संकट के बादल छा जाते हैं। आज के आधुनिक समय में जनसंख्या बढ़ती जा रही है, कृषि क्षेत्र पर भी अधिक उत्पादन की ज़रूरत बढ़ती जा रही है तथा रोज़गार के लिए भी लोग कृषि क्षेत्र की ओर प्रवृत्त हो रहे हैं। पानी की समस्या से हम भी परिचित हैं कि किस प्रकार से शहरों में भूमिगत जल स्तर घटता जा रहा है तथा चेन्नई महानगर में तो 2000 फीट तक पानी नहीं है जिससे माना जा रहा है कि यहाँ भूमिगत जल समाप्त हो गया है।

यही परिस्थितियाँ अन्य शहरों में भी निकट समय में आनेवाली हैं तथा विभिन्न ग्रामीण क्षेत्रों में भी पानी के अत्यधिक दोहन के कारण भूमिगत जल लगभग समाप्ति की ओर है तथा राज्य सरकारें अति निम्न भू जलस्रोतवाले क्षेत्रों को डार्क ज़ोन घोषित करती जा रहीहैं। बोरवेल डलवाने पर रोक लगा रही हैं ताकि जल स्तर और नीचे न जाये तथा पुन: जलभरण हो, जिससे भू जल स्तर ऊपर आ सके। डार्क ज़ोन का जिक्र इस उपन्यास में किया गया है, परन्तु शिक्षा या सूचना संप्रेषण की कमी की वजह से किसानों को इसकी जानकारी नहीं हो पाती है। लाला जैसे लोग भोले-भाले किसानों को अपने जाल में फँसाकर उन्हें कर्ज के दल-दल में धकेलते जाते हैं। किसान दिन-ब-दिन अपनी मौत के निकट आता जाते हैं। जैसे स्वामीराम प्रसाद के साथ होता है, आंध्र प्रदेश के अनेकों किसानों के साथ हुआ था।

खाद और बीज को लेकर भी किसानों में हरित क्रांति के बाद अधिक उत्पादन को लेकर जो लालसा जगी है, इसका प्रमुख कारण बाज़ार का आकर्षण ही है, परन्तु इसने किसानों को हायब्रिड बीज (संकरित बीज) तथा अधिक प्रभावशाली रासायनिक उर्वरकों की ओर आकर्षित किया है। संकरित बीज अधिक महंगे हैं तथा उनको उपचारित करने के लिए रसायन भी अधिक महंगे खरीदने पड़ रहे हैं। संकरित बीज एक से अधिक बार प्रयोग में नहीं आ रहे हैं। प्रत्येक बार नया बीज क्रय करना पड़ता है। अधिक रसायनों के प्रयोग से उत्पादित अनाज भी ज़हरीला हो रहा है तथा भूमि भी प्रदूषित होती जा रही है जिसका अध्ययन हम भूमि प्रदूषण में करते हैं, इससे पर्यावरण को भी नुकसान हो रहा है।

आर्थिक समस्याएँ– प्राचीन काल से ही कृषि किसानों के लिये केवल आजीविका का साधन रही है। परंतु हरित क्रांति के बाद किसानों में बाज़ार का आकर्षण हुआ है, उससे भी किसानों में नकदी फसलों के प्रति रुझान बढ़ा है। इसका उदाहरण 'हलफनामे' उपन्यास में दिया है कि "आंध्रप्रदेश में किसानों द्वारा आत्महत्या के मामलों

में अचानक वृद्धि सन् 1997-98 से शुरू हुई, जब कपास के दाम गिरे और फसलें भी फेल करने लगीं- एक साथ दो पहाड़ सी मुसीबतें जिनके उपाय दुष्कर थे।"[2] किसानों की कृषि लागत में बढ़ोतरी हुई है तथा नकदी फसलों का मूल्य बाज़ार आधारित होने के कारण ज़्यादातर नुकसान ही हो रहा है, जिसके चलते किसान कर्ज में डूबते जा रहे हैं। इसका फायदा लाला जैसे व्यक्ति को मिलता है या किसान बैंक के कर्ज में फँस जाता है, जो कभी कम न होकर बढ़ता ही जाता है। जैसे स्वामीराम प्रसाद के गाँव के अन्य किसान लाला के चंगुल में फँसकर बोरवेल पर बोरवेल करवा रहे हैं तथा उनकी ज़मीन लाला के नाम लिखी जा रही है।

यह समस्या केवल 'हलफनामे' के किसानों की न होकर सभी की है जैसे पंकज सुबीर के उपन्यास 'अकाल में उत्सव' के पात्र रामप्रसाद की भी है। यह समस्या किसानों को कृषि से ही दूर नहीं करती है बल्कि उन्हें जीवन से मृत्यु की ओर ले जा रही है। इसको लेकर भी सरकार को कुछ विशेष प्रयास करने चाहिए तथा किसान क्रेडिट कार्ड योजना में भी कुछ सुधार करना चाहिए, जिससे किसानों को आर्थिक समस्याओं से मुक्ति दिलाई जा सके।

यही समस्या प्रमुख उपन्यासकार संजीव ने अपने उपन्यास 'फाँस' में दिखाई है| इसमें सुनील काका नाम का एक पात्र है जो किसानों को कर्ज व आत्महत्या से रोकने का प्रयास करता है। वह कहता है कि "खबरदार जो कि सीने कर्ज लिया, खबरदार जो किसी ने आत्महत्या के लिए कदम बढ़ाये। कोई भी खुद-ब-खुद यमराज के पास नहीं जाएगा...।"[3] परन्तु किसान का जीवन इतना सीधा व सरल नहीं है। अंत में सुनील काका भी आत्महत्या कर लेता है।

राजनीतिक समस्याएँ- 'हलफनामे' उपन्यास में राजनीति भी एक महत्वपूर्ण समस्या के रूप में सामने आती है| सरकारों का यह दायित्व होता है कि वह आम लोगों के साथ-साथ किसानों के लिए भी योजनायेँ बनाएँ व उसका लाभ भी किसानों को मिले। परन्तु राजू शर्मा ने अपने उपन्यास में दिखाया है किस प्रकार राजनीतिज्ञ सिर्फ अपना लाभ देखता है, किसी और का नहीं। केवल सत्ता से प्रेम है। इसीलिये विधान मंडल को समय से पूर्व ही भंग करवाकर चुनाव जीतकर पुन: सत्ता पर काबिज होना ही मुख्य लक्ष्य है।

मुख्यमंत्री द्वारा 'किसान आत्महत्या' योजना की घोषणा तथा यह योजना तुरंत प्रभाव से लागू करवाने का यही कारण है कि हमारे राज्य में अभी आत्महत्या कम हो रही है तथा अन्य राज्यों में अधिक। इस योजना के आवेदक भी कम ही होंगे जिससे धन का व्यय भी कम होगा तथा किसानों के सम्पूर्ण मत भी हमें ही मिलेंगे जिससे हम पुन: सत्ता पर का बीज होंगे| इस योजना के लाभार्थी के रूप में पूरे राज्य से केवल एकमात्र आवेदन मकईराम का होता है जिसके पिता स्वामीराम प्रसाद ने आत्महत्या की थी| अंत में राशी का चैक मिलने पर मकईराम स्वयं को ठगा हुआ महसूस करता है कि वह अपने पिता की मृत्यु का कारण नहीं जान पाया है, क्या उसे इस धन से संतुष्टि मिलेगी| मुख्यमंत्री उसके पिता के सम्बन्ध में एक शब्द भी नहीं बोलते हैं, जबकि उसके पिता राज्य द्वारा सम्मानित किसान थे| दूसरी ओर जब वह अन्य विरोधी दलों के साथ सम्मेलनों में जाता है तो वे लोग भी उसके दर्द को न देखकर केवल उसका नाम लेकर स्वयं को सत्ता पर कैसे काबिज हो, यही प्रयास करते है। यह मकईराम कुछ समय में समझ जाता है, परन्तु तब तक वह कोमरेड मकईराम बन जाता है, जबकि वह तो केवल एक मिस्त्री मात्र है।

राजनीतिक दलों को यह करना चाहिए कि वे दलगत स्वार्थ को त्यागकर किसानों के हित के लिए योजनाएँ बनायेँ तथा विपक्षी दल भी उनके

साथ मिलकर कार्य करें और योजनाओं को धरातल पर क्रियान्वित करें ताकि किसानों के कल्याण के सही मायनों में काम किया जा सकें।

प्रशासनिक समस्याएँ- किसानों के लिए पटवारी से बड़ा कोई अधिकारी नहीं होता। लेकिन कभी-कभी प्रशासनिक अधिकारी वर्ग से कार्य हो तो अधिकारी किसानों के साथ दोयम दर्जे का व्यहार करते हैं। किसानों को ही बेईमान मानते हैं, जो उनकी मानसिकता को दर्शाता है कि क्या वे कभी किसानों के नज़रिये से देख पायेंगे। हालाँकि हलफनामे में जिला कलेक्टर का व्यवहार मकईराम के प्रति अच्छा होता है, परन्तु अधीनस्थ कर्मचारियों का व्यवहार सही नहीं है। वे केवल किसानों को ही लूटने के तरीके निकालते हैं।

जैसे- तहसीलदार का कथन मुआवजे के संबंध में है कि "मंजूरी इस बात की है कि मंजूरी मिलनी चाहिए|"[4] मकईराम के गाँव के लेखापाल का व्यवहार व उसकी चालाकी केवल उसके खेत अपने नाम करवाने के उद्देश्य के अलावा सब कुछ छलावा है। क्योंकि वह जनता है कि मकईराम कृषी तो नहीं करेगा। वह तो शहर का सबसे बड़ा मिस्त्री है जब वह मशीन खोलता व बंद करता है तो लगता है। मशीनें स्वयं ही ठीक होने लगती हैं। उपन्यासकार ने इसे 'सेल्फ हीलिंग' का नाम दिया है तथा बड़ी निजी कंपनियाँ उसकी तकनीक को खरीदने को लालायित हैं।

न्यायिक प्रशासन में भी देखें तो किसान अपने को सहज नहीं पाता है। न्याय के द्वार पर खड़े दिलासादीन पाण्डेय जैसे स्वयम्भू वकील अपनी चालाकी भरे वाक्यों से कहता है- "सवाल मुआवजे का नहीं है। तुम्हारे पिता ने आत्महत्या की। यह झूठा सावन है। सच्चा सच यह है कि सरकार ने उनकी हत्या को अंजाम दिया। सरकार ज़िम्मेदार है। वह अपनी गलती कबूल कर रही है। इसलिए यह सिद्धांत का प्रश्न है, धन या लालच का नहीं।"[5] इस प्रकार वह मकईराम के रूप में अपनी आमदनी को खोना नही चाहता है। दूसरी ओर हलफनामा है अब इनकी भाषा ऐसी है कि आम आदमी के लिए लिखना बस की बात नहीं है।

शैक्षिक समस्याएँ- अशिक्षा किसानों की सबसे बड़ी समस्या है तथा यही विभिन्न समस्याओं के उत्पन्न होने का कारण भी है। किसानों के अशिक्षित होने के कारण बहुत समस्याओं का सामना करना पड़ता है तथा उन्हें आर्थिक नुकसान भी अधिक होता है| सबसे पहले तो यह कि उन्हें सरकार द्वारा दी जा रही सुविधाओं की जानकारी नहीं हो पाती है। दूसरा, उनको यह ज्ञान ही नहीं होता है, किस फसल को कितनी मात्रा में कौन-सी खाद देनी है। वे सीधे बाज़ार से कोई भी रासायनिक खाद क्रय करते हैं तथा फसल में छिड़का कर देते हैं। अब यदि यह मात्रा कम है तो फसल उत्पादन अच्छा नहीं होगा और ज़्यादा है तो फसल रासायनिक रूप से प्रदूषित हो जाती है और कभी कभी उत्पादन शून्य हो जाता है।

दोनों ही स्थितियों में किसान को ही नुकसान होता है। अत: किसान को कृषि की जानकारी होना अतिआवश्यक है, जो बिना शिक्षा के प्राप्त नही हो सकती है। अंधाधुंध रासायनिक खाद के प्रयोग से उपजाऊ भूमि की उर्वरता घटकर शून्य होती जा रही है तथा भूमि को उपजाऊ बनानेवाले ह्यूम संपूर्णत: समाप्त हो जाते है जो इस ओर संकेत करते हैं कि यह भूमि अब रासायनिक रूप से प्रदूषित हो गयी है। अब इससे पशु धन भी अछूता नही रहा है। वह भी अनेकों जानलेवा बीमारियों का शिकार होता जा रहा है। किसान स्वयं इसके कारण जानलेवा बीमारियों से ग्रसित होकर काल का ग्रास बनता जा रहा है, फिर भी इसका अंधा उपयोग ज़ारी है। इसके अति प्रयोग को रोकना अति आवश्यक है।

हालाँकि समय-समय पर किसानों के लिए प्रशिक्षण का आयोजन करता है कि कैसे कृषि उत्पादन को बढ़ाकर किसान की आय को बढ़ाया दिया जाये।

परन्तु ऐसे प्रशिक्षण से कितने किसानों को लाभ मिलता होगा, जब भारत में 70% लोग कृषि से अपनी आजीविका चला रहे है|

अन्य समस्याएँ – किसानों के जीवन में समस्याओं की कमी नहीं है। एक जाती है तो दुसरी सामने तैयार रहती है। सामाजिक रीति-रिवाज़ व परम्परागत रुढ़िवादी परम्पराएँ भी किसानों के लिए समय-समय पर बोझ बनकर आती हैं तथा इसके कारण किसान कृषि पर भी ध्यान नही दे पाते हैं। दुसरी तरफ कर्ज़ा भी बढ़ जाता है| शिक्षा न होने के कारण कई बार किसान अंधविश्वास का शिकार हो जाता है। जैसे मकईराम के पिता को लाला हलफनामे उपन्यास में बताता है तथा उसके बारे में अफवाह फैलाता है ताकि उसका धंधा अबाध रूप से ज़ारी रहे।

सरकार को अपना सूचना प्रसारण तंत्र और ज़्यादा मजबूत बनाना चाहिए ताकि सरकार द्वारा बनाई गयी योजनाओं की जानकारी तथा किसानों के लिए बनायी गयी नीतियों की जानकारी किसानों को सीधे तौर पर मिल सके। यदि सरकार द्वारा घोषित डार्क ज़ोन की जानकारी यदि स्वामी प्रसाद व अन्य किसानों को होती तो वे बोरवेल नही डलवाते और कर्ज में नहीं डूबते।

सरकार को किसानों को इस बात को लेकर भी जागरूक करने की आवश्यकता है कि वे जल का अत्यधिक दोहन न करें। किसानों को कभी-कभी पानी से रेट के टीलों को समतल बनाते हुए देखा गया है। इससे दो नुकसान होते हैं। पहला कि उपजाऊ भूमि नीचे दब जाती है तथा दूसरा जल का अनुचित दोहन होता है, जिससे भूगर्भीय जल-स्तर कम होता जाता है। 'हलफनामे' उपन्यास में यह संकेत भी किया गया है कि स्वामीप्रसाद जब भी पानी कहीं देखता है तो वह उस पात्र का पानी वहीं ज़मीन पर उंड़ेल देता है तथा कहता है कि भूमि प्यासी है। यह जल पुनर्भरण की और संकेत है परन्तु किसान को जानकारी नहीं है कि केवल धरातल पर पानी देने से जल पुनर्भरण नहीं होता है, उन्हें इसके लिए प्रशिक्षण उपलब्ध करवाया जाये|

निष्कर्ष: हम यह कह सकते हैं कि उपर्युक्त उपन्यास में अभिव्यक्त की गयी समस्याओं को सरकार तथा प्रशासन को व्यवहारिक दृष्टिकोण से समझकर उनका समाधान करना चाहिए| किसानों को उनके लिए बनी सरकारी योजनाओं की पूरी जानकारी उपलब्ध करवानी है, वह भी ग्रामीण स्तर पर, जिससे किसान सीधे तौर पर लाभान्वित हो सके। सभी राजनीतिक दलों का उद्देश्य यही होना चाहिए कि किस तरह हम किसानों के जीवन स्तर को उच्च स्तर पर ला सकते हैं।

सन्दर्भ:

1. https://www.iasbook.com/hindi/essay-agriculture/
2. राजूशर्मा, हलफनामे, राधाकृष्णप्रकाशन, नईदिल्ली, संस्करण 2006, पृष्ठ सं. 47
3. संजीव, फाँस, वाणीप्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2015, पृष्ठ सं. 25
4. राजूशर्मा, हलफनामे, राधाकृष्णप्रकाशन, नईदिल्ली, संस्करण 2006, पृष्ठ सं. 160
5. वही, पृष्ठ सं. 37

◆ शोधार्थी,
हिंदी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग,
केरल केन्द्रीय विश्वविद्यालय,
पेरिया, कासरगोड, केरल , 671320
dhanrajcukerala@gmail.com
मो.9462063142

मुद्रक तथा प्रकाशक डॉ.पी.लता, आरती, टी.सी. 14/1592, फोरस्ट ऑफिस लेन, वषुतक्काटु, तिरुवनन्तपुरम -14 द्वारा अबी प्रकाशन एन्ड प्री-प्रेस, करुमम्, तिरुवनन्तपुरम -2 में मुद्रित तथा डॉ.पी.लता द्वारा संपादित
Printed & Published by Dr.P.Letha, Arathi, T.C. 14/1592, Forest Office Lane, Vazhuthacaud, Thiruvananthapuram -14, Printed at Abi Design & Pre-Press, Karumom, Thiruvananthapuram -2 & Edited by Dr. P. Letha